अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष- 43, अंक- 21, 16-30 जून 2020

आई कांट ब्रीथ

अश्वेत जॉर्ज फ्लॉयड की गरदन पर अपना घुटना गड़ाने वाले अमेरिकी पुलिस अफसर डेरेक चेविन का अंदाज इतना वीभत्स था, मानो गोरे अधिनायकवाद ने काले अस्तित्व की गरदन को अपने घुटनों तले दबा रखा हो। इस अत्याचार की जड़ें, वह चाहे अमेरिका हो या भारत, मनुष्य द्वारा बनाई हुई अंधी न्यायप्रणाली, पुलिसिया प्रशिक्षण और हमारे जातीय संस्कारों में है; और यह सब बिना किसी खास परिवर्तन के, नस्लवादी जमाने से चला आ रहा है। पुलिस को जूझने का प्रशिक्षण तो दिया जाता है, पर समाज का भरोसा जीतने का नहीं। अमेरिका का समाज अपनी पुलिस के इस दुराचरण के खिलाफ रोष में है।

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 43, अंक : 21, 16-30 जून 2020

अध्यक्ष
महादेव विद्रोही

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994
संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **भवानी शंकर कुसुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अरविन्द अंजुम**
अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. विशद विविधताओं का देश भारत... 3
3. युद्ध क्या है? क्यों है? इसका उपचार... 5
4. अंधेरी खंदकों में सत्ताओं के खुले आकाश... 6
5. अब न तेरी सिसकियों पे कोई रोने... 7
6. कहां हो ईश्वर!... 9
7. हिन्दी पट्टी में कोई सवाल क्यों नहीं है?... 10
8. आपदा को अवसर बनाने में मशगूल... 13
9. श्वेत तमस... 14
10. मुम्बई से पलायन कर रहे हैं लोग... 17
11. सर्व सेवा संघ की राष्ट्रीय कार्यकारिणी... 19
12. तीन कविताएं... 20

संपादकीय

कोरोना और ग्रामस्वराज्य

कोरोना महामारी का एक अन्य प्रभाव भी प्रकट हुआ है। परिचय विहीनता से दूरी बनाये रखना जरूरी है। जिनके बीच परिचय है, जो परिचय समूह हैं या जो सहजीवन समूह हैं, उनकी दिनचर्या की जानकारी रहती है, उनके स्वास्थ्य में छोटे से छोटे उतार-चढ़ाव का ज्ञान रहता है। ऐसे सहजीवन समूह में आश्वस्त होकर रह सकते हैं। परिवार एवं ग्राम समुदाय ऐसे ही संबंधों से गुंथे सह-जीवन समूह हैं। ध्यान दें तो यह भी स्पष्ट दिख जायेगा कि लॉकडाउन के दौरान कृत्रिम (artificial) व्यवस्थाएं बंद हो गयीं, जिनमें बाजार, फैक्टरी आदि शामिल हैं। किन्तु स्वाभाविक अकृत्रिम व्यवस्थाएं जैसे परिवार, ग्राम समुदाय, खेती, जंगल, नदी आदि बंद नहीं हुए। इसके उलट कृत्रिम व्यवस्थाओं के बंद होने से ये और शुद्ध व स्वच्छ हो गये।

दूसरी बात, लाखों-लाख लोगों के लिए अंतिम सुरक्षा का ठौर गांव ही बना। कृत्रिम व्यवस्थाओं में कोई मरना भी नहीं चाहता। पिछले 300 वर्षों में एक मायाजाल बना। गांव के रोजगार खत्म किये गये, खेती को घाटे का व्यवसाय बना दिया गया और इन सबके परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों पर कारपोरेट जगत का कब्जा तथा इन संसाधनों पर जीवन निर्वाह करने वाले समुदायों को बेदखल करने का षड्यंत्र रचा गया। यही 'पूंजीवादी विकास' का मूल आधार है।

कोरोना महामारी के बाद यह स्पष्ट हो गया है कि अंतिम सुरक्षा गांव में ही है। शहरों का जो चरित्र महामारी व लॉकडाउन के कारण उजागर हुआ, उसके उपरांत यह मानना मृग मरीचिका होगी कि शहर गांव के गरीबों का समाधान बन सकते हैं। थोड़े लोगों के लिए अस्थाई समाधान हो सकते हैं। लेकिन यदि गांव ही स्थाई समाधान बन सकता है तो गांव की पुनर्रचना पर ध्यान देना होगा। वर्तमान समस्या ने इस चुनौती को गांव के समक्ष खड़ा कर दिया है। गांव से पलायन रुके, इसके लिए गांव की पुनर्रचना के काम में उन सबको लगना होगा, जो वापस गांव लौटे हैं तथा उन्हें भी, जो गांव में स्थाई रूप से रहते हैं। इस दिशा में सबसे पहला कदम यह होगा कि गांव के लोग इस विचार को स्वीकार करें। प्रयोग के रूप में यदि देश भर में 15-20 गांव भी इस विचार को स्वीकार कर लें तो परिवर्तन का चक्र घूमना शुरू कर देगा।

इन प्रयोग क्षेत्रों में स्वावलंबी आत्मनिर्भर गांव के विचार को स्थापित करना होगा। ग्राम क्षेत्रों में उपलब्ध प्राकृतिक स्रोतों व संसाधनों पर पहला अधिकार ग्राम समुदाय का है। इसलिए प्राकृतिक स्रोतों को पूंजीवादी बाजार के चंगुल से मुक्त कराना, वैचारिक स्तर पर एक जरूरी कदम होगा। खेत व फसलें कारपोरेटी मकड़जाल में फंसते जा रहे हैं। गांव की सामूहिक शक्ति से इससे मुक्त होने का अभियान चलाना होगा। वाणिज्यिक खेती को कम करना शुरू करें। एक अवसर मिला है, जब खेती को बहुराष्ट्रीय कंपनियों से मुक्त करने का अभियान तेज किया जा सकता है। बीज, उर्वरक, कीटनाशक, जल प्रबंधन, जोताई एवं कृषि प्रसंस्करण के मामले में गांव को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में बढ़ेंगे, तो कई प्रकार के रोजगार गांव में ही पैदा होंगे।

इसी प्रकार वस्त्र एवं स्वास्थ्य स्वावलंबन के लिए कपास की खेती एवं औषधीय पौध विकास का काम महत्त्वपूर्ण होगा। वस्त्र निर्माण में कई स्तर के स्थानीय रोजगार खड़े हो जायेंगे। औषधीय पौध विकास से स्वस्थ जीवन का आधार बनेगा तथा 90 से 95 प्रतिशत रोगों के लिए डॉक्टरों का मुंह नहीं देखना पड़ेगा।

पशुपालन द्वारा खेती एवं स्वास्थ्य दोनों को समृद्ध करने में मदद मिलेगी। इनके अलावा स्थानीय स्रोत आधारित उत्पादन का कार्य भी खड़ा किया जा सकता है। इन सबके लिए लोगों के ज्ञान, विशेषकर कौशल ज्ञान में वृद्धि का कार्य खड़ा करना होगा। स्रोतों की उपयोग विधि तथा प्रसंस्करण विधि के ज्ञान को पुनर्जीवित करना होगा।

साथ ही समाज को बदलने का काम भी शुरू करना होगा। श्रेणीबद्धता को खत्म करने की दिशा में प्रयास करेंगे तभी बाहरी हस्तक्षेप को न्यूनतम स्तर पर रखा जा सकेगा। स्त्री सशक्तीकरण, ग्राम विकास व पुनर्निर्माण में उनकी समान स्तर की सहभागिता से ग्राम स्वराज्य की दिशा में बढ़ा जा सकेगा। सामूहिक निर्णय की प्रक्रिया व सर्व सहमति निर्माण की प्रक्रिया भी विकसित करनी होगी। कोरोना महामारी ने गांव के लोगों के सामने अस्तित्व बचाने का संकट खड़ा कर दिया है। उन्हें नये रास्ते के निर्माण में मदद करना होगा।

–बिमल कुमार

विशद विविधताओं का देश भारत

❑ अर्नेस्तो 'चे' गेवारा

बीती 14 जून को क्यूबा के सशस्त्र क्रांतिकारी चे गेवारा का जन्मदिन था। चे हिंसक क्रांति में विश्वास रखते थे, वैसे ही जैसे चन्द्रशेखर और भगत सिंह। 1959 में चे ने भारत की यात्रा की और देश भर में कई जगह गये। कलकत्ता भी गये और दिल्ली के आसपास के गांवों में भी। वे प्रधानमंत्री नेहरू से भी मिले और दिल्ली के गांवों में सहकारी खेती करने वाले किसानों से भी तथा उपले थापने वाली ग्रामीण स्त्रियों से भी। इस यात्रा का एक परिणाम यह हुआ कि चे गांधी जी के अहिंसक सत्याग्रह के प्रयोगों के मुरीद हो गये। जुलाई 1959 में भारत की यात्रा से वापस हवाना लौटने के बाद अर्नेस्तो 'चे' गेवारा ने अपनी भारत यात्रा की रिपोर्ट लिखी। यह रिपोर्ट उन्होंने राष्ट्रपति फिदेल कास्त्रो के सुपुर्द की। बाद में, 12 अक्तूबर 1959 को, वह रिपोर्ट क्यूबा के साप्ताहिक 'वरदे ओलिवो' में प्रकाशित हुई। वह रिपोर्ट 'जनसत्ता' के तत्कालीन संपादक ओम थानवी ने चे के बेटे कामीलो गेवारा मार्श के सौजन्य से अपनी हवाना यात्रा में हासिल की। प्रस्तुत है उसका मूल स्पानी से प्रभाती नौटियाल द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद। **-सं.**

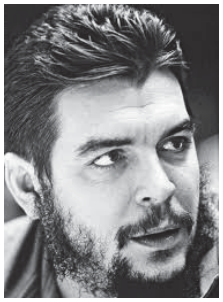

काहिरा से हमने भारत के लिए सीधी उड़ान भरी। उनतालीस करोड़ आबादी और तीस लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल के देश भारत के लिए। मिस्र की धरती जितनी नाटकीय महसूस होती है, भारत की मिट्टी वैसी नहीं है। उस रेगिस्तानी देश से कहीं बेहतर हैं यहां के जमीनी हालात। लेकिन सामाजिक अन्याय ने जमीन का इस कदर बंटवारा किया है कि थोड़े-से लोगों के पास अत्यधिक संपदा है, तो अधिकांश के पास कुछ नहीं है।

अट्ठारहवीं सदी के अंत में और उन्नीसवीं के शुरू में इंग्लैंड ने भारत को अपना उपनिवेश बनाया था। आजादी के लिए बड़े संघर्ष हुए। लेकिन अंग्रेजों की दमन शक्ति भारी साबित हुई। उस औपनिवेशिक ढांचे से वहां का समृद्ध हस्तशिल्प-उद्योग तो तबाह हुआ ही, वहां की आर्थिक स्वतंत्रता को ध्वस्त करने और भारतीयों को अनंतकाल तक अपने साम्राज्य के बोझ के नीचे दबाए रखने पर भी वह आमादा था। वर्तमान सदी का कुछ हिस्सा और बीती उन्नीसवीं सदी, इन्हीं हालात में देश को यत्र-तत्र विद्रोह के रास्ते पर डाल चुकी थी और मासूम जनता का खून बहता जा रहा था।

औपनिवेशिक अंग्रेजी सत्ता पिछली बड़ी लड़ाई से तो बच निकली, लेकिन विघटन के स्पष्ट संकेतों के साथ। महात्मा गांधी के गूढ़ व्यक्तित्व के माध्यम से भारत ने अपने सत्याग्रह को जारी रखा और अंततः अपेक्षित स्वतंत्रता हासिल की।

गांधी की मृत्यु पर नेहरू ने सामाजिक बोझ की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठा ली थी। एक ऐसे देश का नेतृत्व अपने हाथों में लिया, जिसकी आत्मा उस दीर्घ शासन से रुग्ण हो चुकी थी और जिसकी अर्थव्यवस्था महानगरीय लंदन के बाजार की आपूर्ति के लिए अभिशप्त थी। आर्थिक भविष्य के विकास के लिए किसानों में जमीन का बंटवारा और देश के औद्योगीकरण को सुदृढ़ करना जरूरी था। कांग्रेस पार्टी के नेताओं ने उस कार्य के लिए एक अनुकरणीय उत्साह के साथ अपने आपको समर्पित कर दिया।

यह बहुविध और बहुत बड़ा देश, अनेक प्रथाओं और रूढ़ियों का देश है। जिन सामाजिक समस्याओं में हम आज जी रहे हैं, उनसे उपजे हमारे विचार उन प्रथाओं और रूढ़ियों से बिल्कुल भिन्न हैं। सामाजिक-आर्थिक ढांचा हमारा एक-सा है। गुलामी और औपनिवेशीकरण का वही अतीत, विकास की सीध की दिशा भी वही। इसके बावजूद कि ये तमाम हल काफी मिलते-जुलते हैं और उद्देश्य भी एक ही है, फिर भी इनमें दिन-रात का अंतर है। एक ओर जहां भूमि-सुधार की आंधी ने कांपाग्वैइ (क्यूबा) की जमींदारी को एक ही झटके में हिला कर रख दिया और पूरे देश में किसानों को मुफ्त जमीन बांटते हुए वह अनवरत रूप से आगे बढ़ रही है; वहीं महान भारत अपनी सुविचारित और शांत पूर्वी अदा के साथ बड़े-बड़े जमींदारों को वहां के किसानों को भू-दान करके उनके साथ न्याय करना समझा रहा है।

दरअसल, जो उनकी खेती को जोतते-बोते हैं, उन्हीं को एक कीमत अदा करने के लिए राजी कर रहा है। इस प्रकार एक ऐसी कोशिश हो रही है कि समूची मानवता में जो समाज इतना अधिक आदर्शमय और संवेदनशील है, लेकिन सबसे अधिक गरीब भी, उसकी गरीबी की ओर असंवेदनशील दरिद्रता का प्रवाह किसी तरह अवरुद्ध हो सके।

राजधानी नई दिल्ली के समीप हम एक सहकारी खेती को देखने गए। हरियाली रहित करीब चालीसेक किलोमीटर अनुर्वर जमीन से गुजरते हुए हमें अचानक कुछ जानवर और भैंसें दिखाई पड़ीं। हम हतोत्साह करने वाली गरीबी और मिट्टी की दीवारों से बने घरों के एक छोटे से गांव के पास थे। सहकारिता से गर्वोन्मत्त एक स्कूल दो अध्यापकों के असाधारण प्रयत्नों पर निर्भर था। उसमें पांच कक्षाएं चलती थीं। चेहरों पर बीमारियों के लक्षण झलकाते कमजोर बच्चे पालथी मारकर अपने अध्यापक का पाठ सुन रहे थे।

यहां जो बड़ा विकास था, वह था सीमेंट के घेरे वाले पानी के दो कुएं, जिनसे ज्यादा लोग पानी भर सकते थे। लेकिन कुछ दूसरे अभिनव परिवर्तन भी थे, जो असाधारण सामाजिक महत्त्व के थे और जो वहां व्याप्त गरीबी का आभास भी कराते हैं। कृषि-सुधार की तकनीकें भारतीय किसान को सिखाती हैं कि किस तरह वह अपने पारंपरिक ईंधन को बिजली बनाने में इस्तेमाल कर सकता है।

छोटा ही सही, लेकिन एक रोचक परिवर्तन है कि बुरे (अपरिष्कृत) ईंधन के रूप में इस्तेमाल

होने वाले गोबर की बड़ी मात्रा को किसान खाद के रूप में इस्तेमाल के लिए भी बचा लेता है। एक प्यारी-सी आवाज के साथ बच्चे और औरतें सभी गोबर इकट्ठा करने में जुट जाते हैं। उसे धूप में सुखाने के लिए रखते हैं और बाद में अलग-अलग ऊंचाइयों के अनेक पिरामिडों में बड़ी चींटियों की बांबी की तरह लगा देते हैं। भारत की सरकार के प्रयत्नों का धन्यवाद कि जनता अब रोशनी के लिए उन छोटी भट्ठियों और अपनी जमीन को खाद देने के लिए उस महत्त्वपूर्ण उत्पाद कर निर्भर कर सकती है।

एक बात और देखी कि पशु यहां प्राचीन काल से ही पवित्र माना गया है। वह खेत जोतता था, दूध देता था। उसके अवशिष्ट की प्राकृतिक ईंधन के रूप में भी बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। हमें बताया गया कि किसान को उसका धर्म इस बेशकीमती पशु की हत्या की अनुमति नहीं देता है और इसीलिए उसे एक पवित्र पशु माना गया। एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए धर्म की ऐसी आड़ ली गई कि उत्पाद को अत्यधिक प्रभावशाली बना दिया गया। यह बात समाज के हित में ही थी। धीरे-धीरे साल दशकों में बदलते गए। अब जबकि यांत्रिक हल और द्रव-ईंधन का जमाना भी आ गया, उस पवित्र पशु की पूजा लेकिन आज भी उसी आदर के साथ जारी है। उसकी आबादी खूब फल-फूल रही है और कोई विधर्मी भी उसका मांस खाने की हिम्मत नहीं कर सकता है। अठारह करोड़ पशु हैं भारत में अमेरिका में जितने हैं, उनसे लगभग दस करोड़ अधिक। दुनिया में पशु-संख्या में भारत का दूसरा नंबर है। धर्मपरायण और सांस्कृतिक नीति-नियमों का पालन करने वाले भारतीय जन-मानस को इस पवित्र पशु की पूजा से भारतीय शासन भी नहीं रोक सकता।

साठ लाख आबादी का प्रथम बड़ा शहर कोलकाता एक बहुत अविश्वसनीय संख्या की गायों के साथ जीने को अभिशप्त है। इन गायों के झुंड के झुंड सड़कों से गुजरते हुए या कहीं भी बीच सड़क पर पसरते हुए यातायात को अवरुद्ध कर देते हैं। इस शहर में हमें भारत का एक विचित्र और जटिल परिदृश्य देखने को मिला। वह औद्योगिक विकास, जो भारी उद्योग के उत्पाद, जैसे कि रेल इंजिन बनाता है और जिस जगह पहुंचने में हमें अभी और वक्त लगेगा, एक भयानक दरिद्रता से बिल्कुल बगल से सटा हुआ है। नई-नई खोजों के सभी क्षेत्रों में जो तकनीकी विकास देखने को मिलता है, उससे भारतीय वैज्ञानिकों की दुनिया के हर क्षेत्र में पहचान बनी है।

वहीं कृष्ण नाम के एक विद्वान से मुलाकात का मौका मिला। वह एक ऐसा चेहरा था, जो हमारी आज की दुनिया से दूर लगता था। उस निष्कपटता और विनयशीलता के साथ उसने हमसे लंबी बातचीत की, जिसके लिए यह मुल्क जाना जाता है। दुनिया की समूची तकनीकी शक्ति और सामर्थ्य को आणविक ऊर्जा के शांतिप्रिय उपयोग में लगाने की आवश्यकता पर जोर देते हुए उस अंतरराष्ट्रीय बहसों की राजनीति की उसने भरपूर निंदा की, जो आणविक हथियारों की जखीरेबाजी को समर्पित है। **भारत में युद्ध नामक शब्द वहां के जनमानस की आत्मा से इतना दूर है कि स्वतंत्रता आंदोलन के तनावपूर्ण दौर में भी वह उसके मन पर नहीं छाया। जनता के असंतोष के बड़े-बड़े शांतिपूर्ण प्रदर्शनों ने अंग्रेजी उपनिवेशवाद को आखिरकार उस देश को हमेशा के लिए छोड़ने को बाध्य कर ही दिया, जिसका शोषण वह पिछले डेढ़ सौ वर्षों से कर रहा था।**

यह बात बड़ी रुचिकर है कि विरोधाभासों के इस देश में, जहां गरीबी उत्तम किस्म के सभ्य जीवन और उच्च कोटि के तकनीकी ज्ञान के साथ घुली-मिली है, स्त्री को सिर्फ सामाजिक रिश्तों में ही नहीं, राजनीति में भी प्रमुख स्थान हासिल है। अधिक नहीं, एकाध उदाहरण अगर दिया जाए तो दुबली-पतली और मधुर स्वभाव की एक भारतीय स्त्री को कांग्रेस की अध्यक्षा या विदेश उपमंत्री जैसे पदों का कार्यभार मिला हुआ है।

हमारी इस यात्रा में सभी उच्च भारतीय राजनीतिज्ञों से मुलाकातें शामिल थीं। नेहरू ने न सिर्फ एक दादा की आत्मीयता के साथ हमारा स्वागत किया, बल्कि क्यूबा की जनता के समर्पण और उसके संघर्ष में भी अपनी पूरी रुचि दिखाई। हमें अपने बेशकीमती मशविरे दिए और हमारे उद्देश्य की पूर्ति में बिना शर्त अपनी चिंता का प्रदर्शन भी किया। रक्षा मंत्री और संयुक्त राष्ट्र में भारतीय दल के नेता कृष्ण मेनन के बारे में भी वही बात कही जा सकती है। उन्होंने उच्च फौजी अफसरान से भी हमारी मुलाकात करवाई। हमने अपने-अपने देशों की समस्याओं के संदर्भ में विचार-विनिमय किया।

वाणिज्य मंत्री से भी हमारी एक सौहार्दपूर्ण बातचीत हुई, जिसमें भविष्य के वाणिज्य-संबंधों की भूमि तैयार की गई, जो कि काफी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं। जिन उत्पादों की आपूर्ति हम कर सकते हैं, वे हैं तांबा, कोको, टायरों के लिए रेयान और संभवतः निकट भविष्य में चीनी भी। कोयला, कपास, कपड़ा, जूट की बनी वस्तुएं, खाद्य तेल, मेवे, फिल्में, रेल-सामग्री और प्रशिक्षण-विमान वे हमें बेच सकते हैं। लेकिन यह सूची यहीं समाप्त नहीं होती। अनुभव बताता है कि दो उद्योगशील देश साथ-साथ उन्नति करते चल सकते हैं और अपने निर्मित उत्पादों का विनिमय भी कर सकते हैं। उनतालीस करोड़ भारतीयों का स्तर जैसे-जैसे ऊपर उठेगा, हमारी चीनी की मांग बढ़ेगी और हमें एक नया और महत्त्वपूर्ण बाजार मिल जाएगा।

हमारी इस यात्रा से हमें कई लाभदायक बातें सीखने को मिलीं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात हमने यह जानी कि एक देश का आर्थिक विकास उसके तकनीकी विकास पर निर्भर करता है। और इसके लिए वैज्ञानिक शोध संस्थानों का निर्माण बहुत जरूरी है; मुख्य रूप से दवाइयों, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान और कृषि के क्षेत्र में। इन सभी तकनीकी संस्थानों और राज्य के बारे में तमाम सामान्य सूचनाओं का तालमेल और नेतृत्व एक राष्ट्रीय सांख्यिकी केंद्र द्वारा किया जाना चाहिए। भारतीयों को दरअसल इस काम में महारथी हासिल है।

जिस सहकारी स्कूल का जिक्र मैंने अभी थोड़ी देर पहले किया, वहां से हम जब लौट रहे थे तो स्कूली बच्चों ने हमें जिस नारे के साथ विदाई दी, उसका तर्जुमा कुछ इस तरह है: ''क्यूबा और भारत भाई-भाई''। सचमुच, क्यूबा और भारत भाई-भाई हैं, जैसा कि आणविक विखंडन और अंतरभूमंडलीय रॉकेटों के इस युग में दुनिया के सभी मुल्कों को होना ही चाहिए। ❑

युद्ध क्या है? क्यों है? इसका उपचार क्या है?

❑ अव्यक्त

युद्ध के मूल में मनुष्य का लोभ और वर्चस्व की सियासत है। सियासत मात्र का अंतिम परिणाम युद्ध और महाविनाश है। सियासत हमेशा से दुनिया को युद्धों की ओर ले जाती रही है। क्योंकि उसकी दिशा ही वही है। इसे समय रहते ठीक से समझना होगा और सबको समझना होगा। उनको भी, जो आज दैत्याकार अर्थव्यवस्था और सर्वनाशकारी सैन्य-शक्ति के अहंकारी रथ पर सवार हैं।

पंथ, मजहब, फिरके, जातीय श्रेष्ठता, भोगवादी आर्थिक समृद्धि से पैदा हुआ राष्ट्रीय अहंभाव, सैन्य-शक्ति के आधार पर दादागिरी की भावना, ये सब सियासत के ही रूप और दुष्परिणाम हैं। आज कोई निःशस्त्रीकरण की बात तक नहीं करता। विश्व-शांति की बात तक नहीं करता। क्योंकि विदेश नीति और कूटनीति सियासती छलनीति का ही दूसरा नाम हो चुका है। उसका मानवीय रूप से विफल होना तय होता है।

सियासत के मूल में ही सांसारिक सत्तावादी वर्चस्व की भावना है। चाहे वह सत्ता आर्थिक हो, राजनीतिक हो या सैन्य क्षमता का नग्न प्रदर्शन हो। सियासत करती क्या है! वह सबसे पहले समाज को बाँटती है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच अलगाव की दीवार खड़ी करती है। व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि को सबसे बड़े जीवन-मूल्य के रूप में स्थापित कर, वह समाज को बाँटकर उसे कमजोर कर देती है। वह परिवार, दफ्तर, संगठन, संस्था और संबंधों को भी सियासी संघर्ष का अखाड़ा बना देती है। पूरी तरह स्वार्थी बन चुका सियासती मनुष्य हमेशा सुरक्षा की तलाश में रहता है। इसलिए उसे किसी मजहब, किसी जाति, किसी दल, किसी यूनियन, किसी विचारधारा में सुरक्षा महसूस होती है। व्यक्तिगत रूप से आपस में युद्धरत रहते हुए भी वह संगठनों की शरण में जाकर एक-दूसरे के खिलाफ लामबंद होता है। और उसे किसी सैन्य-शक्ति से लैस सियासतदाँ में अपना मसीहा नज़र आने लगता है। तब वह अपने मजहब, जाति, दल, विचारधारा या नेता के विरोध में कुछ भी सुनना नहीं चाहता। यह भी समाज में तरह-तरह के अप्रत्यक्ष युद्धों का जन्म देता है।

राष्ट्रों के बीच युद्ध भी इसी भावना का विस्तार है। **एक असुरक्षामूलक, भौतिकवादी और संग्रहवादी स्वार्थ-सिद्धि (जिसे अक्सर व्यापार कहा जाता है) और साम्राज्यवादी सियासती वर्चस्व का विस्तार है युद्ध।** युद्ध पहले व्यक्ति के भीतर नकारात्मक और सकारात्मक प्रवृत्तियों के बीच शुरू होता है। फिर वह संघर्ष व्यक्ति-व्यक्ति के बीच में प्रकट होता है। इसके बाद वह परिवार, खानदान, जाति, प्रजाति, मजहब, क्षेत्रीयता, दल, कंपनियों के बीच व्यापारिक प्रतिस्पर्धा आदि के आधार पर समाज में बुरी तरह अपनी पैठ बना लेता है। इसी रास्ते वह राष्ट्रों और राष्ट्र-गुटों के बीच पहुँचता है। वहाँ पहुँचते-पहुँचते वह आर्थिक प्रतिस्पर्धा, कच्चे माल के भंडारों पर कब्जा और लूट, महाविनाशकारी हथियारों की होड़ और सैन्य-क्षमता के लगातार विस्तार के भँवर में फँस चुका होता है।

युद्ध को केवल अमुक देश बनाम अमुक देश के बीच देखना हमारी अदूरदर्शिता है। क्योंकि एक व्यक्ति के रूप में हम स्वयं अपने रोज के छोटे-छोटे युद्धों को स्वीकृति और मान्यता दे चुके होते हैं, इसलिए युद्ध के मूल कारणों को देख पाना हमारे लिए लगभग असंभव हो चुका होता है। सियासत का पर्दा ही ऐसा होता है, जो हमारी आँखों पर होते हुए भी हमें पता नहीं चलता। यह पर्दा हटेगा कैसे?

यह अंधकारी और युद्धमार्गी पर्दा हटेगा रूहानियत से। केवल और केवल रूहानियत से। रूहानियत की अनुभूतिपरक साधना और सादगीपूर्ण रहने से ही व्यक्तिगत और सामाजिक युद्धाग्नि का शमन हो सकेगा। पश्चिम की भोगवादी और साम्राज्यवादी जीवन-पद्धति, कबीलाई मजहबों के नाम पर सियासी एकता और उसकी प्रतिक्रिया में जन्मे चीन जैसे पूर्वी समाजों के रूहानियतविहीन भोगवाद का उपचार आखिर कैसे हो?

उपचार ये है कि सियासी जकड़नों से मुक्त हों। रूहानियत को समझें। व्यापक अर्थों वाले विज्ञानमूलक अध्यात्म को समझें। मजहबों और तदाधारित अंधविश्वासों, कट्टरताओं की जकड़नों से बाहर निकलें। नया मनुष्य बनने के मार्ग पर बढ़ चलें। पारस्परिक भय, असुरक्षा, ऐतिहासिक पीड़ाबोध आदि से पैदा होने वाली तमाम मनोवैज्ञानिक विकृतियों से बाहर निकलें। सारे दिखावटी चोंगों और आवरणों को उतार फेंकें। अंतहीन लोभ और भोगवाद से उपजी शारीरिक और मानसिक विकृतियों से बचें। तभी यह युद्ध समझ में आएगा।

सवाल है कि इसकी पहल कौन करेगा? हर कोई तो दूसरे का इंतज़ार कर रहा है। पहल तो खुद ही करनी पड़ेगी। सच्ची निर्भयता के मार्ग में कहीं हार-जीत का सवाल ही कहाँ पैदा होता है? महाविनाशकारी युद्धों से कायरतापूर्ण और कारुणिक मौत मरने से अच्छा है कि अपने भीतर चल रहे युद्ध का शमन करते हुए, इंसानी एकता के मार्ग में पूरण परमानंद रूपी मृत्यु का वरण करें। लेकिन ये बात सुनेगा कौन?

महाभारत युद्धमात्र के खिलाफ रचा गया महाकाव्य है। वह युद्ध की प्रतिस्थापना नहीं करता। युद्ध की विभीषिका को दर्शाता है। महाभारत जैसे युद्धविरोधी काव्य का लेखक भी अंत में यही कहता है—

'ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येषु न च कश्चिच्छृणोति मे।' यानी मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार रहा हूँ, लेकिन कोई मेरी बात सुनता ही नहीं है। लेकिन निराश होने का कोई कारण नहीं है। जिस दिन मनुष्य व्यक्तिगत स्तर पर अपने अंतःकरण की बात सुनना शुरू करेगा, उसी दिन उसे युद्धों से मुक्ति मिलेगी। महाविनाश के पहले या बाद में सुनना या न सुनना उसके अपने हाथ में है। ❑

अंधेरी खंदकों में सत्ताओं के खुले आकाश की तलाश!

❑ श्रवण गर्ग

अमेरिका में इस वक्त ख़ंदकों की लड़ाई सड़कों पर लड़ी जा रही है। दुनिया भर की नज़रें भी अमेरिका पर ही टिकी हुईं हैं। कोरोना के कारण सबसे ज्यादा मौतें अमेरिकी अस्पतालों में हुईं हैं, पर देश के एक शहर में पुलिस के हाथों हुई एक अश्वेत नागरिक की मौत ने सभी पश्चिमी राष्ट्रों की सत्ताओं के होश उड़ा रखे हैं। जिस गोरे पुलिस अफ़सर ने अश्वेत नागरिक जॉर्ज फ्लॉयड की गर्दन को उसका दम घुटने तक अपने घुटने के नीचे आठ मिनट से ज्यादा समय तक दबाकर रखा होगा, उसे तब अन्दाज़ नहीं रहा होगा कि वह पाँच दशकों के बाद अपने देश में किस नए इतिहास की नींव डाल रहा है। दुनिया की जो सर्वोच्च ताक़त मुँह पर मास्क पहनने को कमजोरी का प्रतीक मानती हो, उसे अपना मुँह छुपाने के लिए घर के बंकर में कोई एक घंटे से ज्यादा का समय बिताना पड़ा।

इतिहास में कुछ क्षण ऐसे आते हैं, जब पूर्व में लिखे गए सारे शब्द ध्वस्त हो जाते हैं। जो क्षण अमेरिकी आकाश को इस समय सड़कों से उड़ते हुए धुएँ से काला और अशांत कर रहा है, वह तब भी इतनी तीक्ष्णता से हाजिर नहीं हुआ था, जब कोई पचास साल पहले अश्वेतों के नागरिक अधिकारों के लिए लड़ने वाले नेता मार्टिन लूथर किंग की हत्या कर दी गई थी। किंग राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की अहिंसक क्रांति के एक सच्चे अनुयायी थे। उल्लेखनीय है कि गांधी जी की तीस जनवरी 1948 को हत्या किए जाने के बाद देश में हिंसा नहीं हुई थी, पर वर्ष 1984 में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या के बाद क्या कुछ हुआ था, वह उन लोगों की स्मृतियों में अभी भी जीवित है, जिन्होंने उस क्षण को जिया और देखा है।

दुनिया बदल रही है पर दुनिया के शासक नहीं बदलना चाहते हैं। दुनिया अपने पंखों का विस्तार किए हुए घने बादलों के बीच उड़ रही है और शासक अंधेरी ख़ंदकों में अपनी सत्ताओं के खुले आकाश तलाश रहे हैं। कोरोना के कारण अमेरिका में अब तक एक लाख से अधिक लोग अपनी जानें गंवा चुके हैं और इनमें एक बड़ी संख्या अश्वेत नागरिकों और 'केयर होम्स' में रहने वाले बुजुर्गों की है। ये अश्वेत नागरिक कोई दो सौ से अधिक सालों से जिस दासता के खिलाफ़ और समान

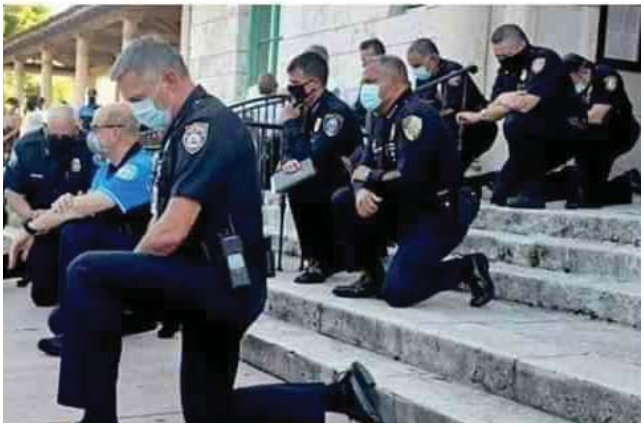

अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं, वही गुस्सा इस समय सड़कों पर फूटा पड़ रहा है।जॉर्ज फ़्लॉयड तो केवल एक नाम है। दुनिया भर की जासूसी में लगा देश, इस बात का भी पहले से पता नहीं लगा सका कि नागरिक विरोध की आग का धुआँ ठीक व्हाइट हाउस के सामने से भी उठ सकता है और तब राष्ट्रपति की सीक्रेट सर्विस के लोग इतने घबरा जाएँगे कि श्वेत भवन की भव्य इमारत की बत्तियाँ ही कुछ क्षणों के लिए गुल करनी पड़ जायेंगी।

अश्वेत नागरिक जॉर्ज फ़्लॉयड की गर्दन को जब गोरे पुलिस अफ़सर डेरिक चेविन ने अपने घुटने के नीचे दबा रखा था, तब वह गिड़गिड़ा रहा था कि 'मैं साँस नहीं ले पा रहा हूँ' (I can't breathe), आज समूचे अमेरिका का दम घुट रहा है और कई स्थानों पर संवेदनशील पुलिसकर्मी आक्रोशित अश्वेत-श्वेत नागरिकों से अपने ही कुछ साथियों के कृत्य के लिए क्षमा माँग रहे हैं। अद्भुत दृश्य हैं कि जॉर्ज फ्लॉयड हादसे से उतने ही दुखी गोरे नागरिक अपने अश्वेत पड़ोसियों के सामने एक घुटने के बल बैठकर अपनी समूची जमात की ओर से सदियों से चले आ रहे नस्लवाद के लिए माफ़ी की माँग कर रहे हैं और जो लोग सामने खड़े हैं, उनकी आँखों से आंसू बह रहे हैं।

वाशिंगटन और न्यूयॉर्क सहित अमेरिका के अन्य चकाचौंध वाले राज्यों में इस समय जो कुछ भी चल रहा है, उसने दुनिया के सबसे सम्पन्न राष्ट्र की विपन्नता को उजागर कर दिया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, विश्व भर की नज़रें इस समय अमेरिका की ओर हैं कि राष्ट्रपति पद के चुनावों के ठीक पहले आए इस अभूतपूर्व संकट से ट्रम्प कैसे बाहर आते हैं। इन देशों में वे हुकूमतें भी शामिल हैं, जो आहिस्ता-आहिस्ता 'एकतंत्रीय' शासन व्यवस्था की ओर बढ़ रही हैं और जिन्हें पूरा यक़ीन है कि विजय अंततः उसी की होती है, जो सत्ता में होता है। जो पिछले दो सौ सालों में सफल नहीं हुए, वे इस बार कैसे हो सकते हैं?

इन हुकूमतों की चिंता केवल इतनी भर है कि मौजूदा विरोध कितने दिनों तक चलता है। ट्रम्प ने विरोध से निपटने के लिए सेना के प्रयोग और ख़ूँख़ार कुत्तों के इस्तेमाल तक की अगर चेतावनी दी है तो मानकर चला जाना चाहिए कि अपने देश की बहुसंख्यक गोरी आबादी का समर्थन उन्हें प्राप्त है, जो चुनावों तक जारी रहेगा। अगर इसमें सच्चाई है तो भी कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि सबको समान अधिकारों की गारंटी देने वाला संविधान तो हमारे यहाँ की तरह ही अमेरिका में भी है। ❑

जॉर्ज फ्लॉएड की नस्लभेदी हत्या के बाद

अब न तेरी सिसकियों पे कोई रोने आएगा

❑ शिवकांत

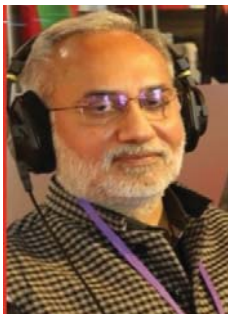

संयोग की बात है. 51 साल पहले जुलाई के जिन दिनों में नील आर्मस्ट्रोंग और बज़ ऑल्डरिन चाँद पर इंसान का पहला क़दम रख रहे थे, उन्हीं दिनों धरती पर अमरीकी राज्य पैन्सिलवेनिया के शहर यॉर्क में अफ्रीकावंशी काले अमरीकियों के नागरिक अधिकारों के सवाल पर दंगे चल रहे थे. आज 51 बरसों के बाद जब एक अमरीकी निजी कंपनी का पहला अंतरिक्ष यान दो अमरीकी अंतरिक्ष यात्रियों को लेकर अंतरिक्ष स्टेशन से जा जुड़ा है, तब धरती पर अमरीका के कम से कम तीन दर्जन बड़े शहरों में अफ्रीकावंशी काले नागरिकों की दशा को लेकर रोष भरे विरोध प्रदर्शन हो रहे हैं.

हो सकता है, अमरीका के अंतरिक्ष विमानों का अंतरिक्ष उड़ानों पर जाना और अमरीका के शहरों में अफ्रीकावंशी काले नागरिकों की दशा को लेकर दंगे और प्रदर्शन होना एक संयोग की बात हो. लेकिन अमरीका का राष्ट्रपति अपने नागरिकों का रोष ठंडा करने के लिए शांति और सहानुभूति की बातें करने के बजाय गोलियों से उड़ाने की ऐसी धमकियाँ दे, जिनमें नस्लवादी जमाने के भड़काऊ नारों की गूँज सुनाई देती हो, तो वह संयोग की बात नहीं हो सकती.

महामारी को भुलाकर अमरीका में इतने बड़े पैमाने पर प्रदर्शन और दंगे हो रहे हैं, जितने मार्टिन लूथर किंग की हत्या के बाद कभी नहीं हुए. ज्यादातर प्रदर्शन शांतिपूर्ण तरीके से हो रहे हैं. लेकिन मिनियापोलिस, मेम्फिस, फ़ीनिक्स, कोलम्बस, एटलांटा, बॉस्टन, लॉस एंजिलिस, फिलेडेल्फिया और डैलेस में लूटपाट और आगज़नी की घटनाएँ भी हुई हैं. भीड़ को भगाने के लिए पुलिस ने आँसू गैस और रबर की गोलियों का प्रयोग किया है और दर्जनों लोगों को चोट आई है.

व्यवस्था को बहाल करने के लिए कई शहरों के मेयरों को नेशनल गार्ड सेना को बुलाना पड़ा है. प्रदर्शनों का यह सिलसिला अमरीका के बाहर भी फैल चुका है. अमरीका में हो रहे प्रदर्शनों के समर्थन में लंदन समेत यूरोप और कैनडा के शहरों में भी प्रदर्शन हुए हैं. प्रदर्शनों का नारा है – we can't breathe – यानी हमारा दम घुटता है.

दंगे और प्रदर्शनों की यह लहर अमरीका के उत्तरी राज्य मिनिसोटा के सबसे बड़े शहर मिनियापोलिस से हुई. पुलिस को शिकायत मिली कि जॉर्ज फ़्लॉएड नाम के अफ्रीकी मूल के व्यक्ति ने सिगरेट ख़रीदने के लिए दुकान में बीस डॉलर का जाली नोट चलाने की कोशिश की. शिकायत दुकान के एक विक्रेता कर्मचारी ने की थी, जिसमें उसने यह भी बताया कि जॉर्ज फ़्लॉएड ने बीस का जाली नोट थमा कर सिगरेट का पैकेट ले लिया और उसे लौटाने से इंकार कर दिया.

कुछ मिनटों बाद चार पुलिसकर्मी दुकान पर पहुँचे जहाँ जॉर्ड फ़्लॉएड अपने साथियों के साथ सड़क के किनारे पार्क की हुई अपनी कार में बैठा था. एक पुलिस वाले ने पिस्तौल दिखा कर उसे बाहर आने को कहा और थोड़ी ज़ोर-ज़बरदस्ती के बाद हथकड़ी पहना दी. घटना के उपलब्ध वीडियो से पता चलता है कि जॉर्ज फ्लॉएड ने हथकड़ी पहनाते वक्त छूटने की कोशिश ज़रूर की थी, लेकिन पहनने के बाद कोई विरोध नहीं किया. जब उसे पुलिस की गाड़ी में थाने ले जाने की कोशिश की गई, तब उसने यह कहते हुए मना किया था कि उसे घुटन की बीमारी है. इसलिए वह तंग जगह में नहीं बैठ सकता.

पुलिस वालों ने जॉर्ज फ्लॉएड को जबरन अपनी गाड़ी में चढ़ाने की कोशिश की, जिसका उसने विरोध किया और जमीन पर गिर गया. उसके बाद उसे काबू में करने के लिए डेरेक चेविन नाम के गोरे पुलिस अफ़सर ने पुलिस की गाड़ी के साथ सड़क पर लेटे जॉर्ज फ्लॉएड की गरदन पर अपना एक घुटना रखा और लगभग नौ मिनट तक उसे उसी तरह दबोचे रहा. गरदन दबने पर जॉर्ज फ्लॉएड ने बार-बार गुहार लगाई कि उसका दम घुट रहा है. उसे साँस लेने में तकलीफ़ हो रही है. उसने मदद की गुहार लगाई. अपनी माँ को भी पुकारा. लेकिन डेरेक चेविन ने गरदन से अपना घुटना नहीं हटाया.

डैरेक चेवन के साथ खड़े उसके तीन साथी पुलिसकर्मियों ने भी उसे हटने को नहीं कहा. उल्टा उन्होंने भी बारी-बारी से जॉर्ज फ्लॉएड के शरीर को अपने घुटनों से दबोचने की कोशिशें कीं. वीडियो में नज़र आता है कि लगभग छह मिनट के बाद जॉर्ज फ्लॉएड निढाल पड़ गया और अस्पताल में जाते ही उसे मृत घोषित कर दिया गया.

इस घटना के बाद पुलिस अफ़सर डेरेक चेविन को नौकरी से तो निकाल दिया गया, लेकिन तीन दिनों तक उस पर कोई जुर्म नहीं लगाया गया। मिनियापोलिस के लोग इस बात से नाराज़ हैं कि तीन दिनों बाद डेरेक पर थर्ड डिग्री हत्या का जुर्म लगाया गया लेकिन हत्या के समय उसके साथ खड़े उसके तीन साथी पुलिसकर्मियों पर अभी तक कोई जुर्म नहीं लगाया गया है.

पिछले तीन महीनों के दौरान अमरीका के दूसरे राज्यों में अफ्रीकी मूल के ही दो और लोगों की इसी तरह सरेआम हत्या हो चुकी है, लेकिन अभी तक किसी पर कोई जुर्म नहीं लगाया गया है. पिछले मार्च में केंटकी राज्य के लुईसविल शहर की चिकित्सा टैक्नीशियन ब्रेओना टेलर को पुलिस ने उसके घर में घुसकर गोलियों से मार डाला. पुलिस का कहना है कि उन्हें शक था कि कोई नशीली दवाओं का तस्कर वहाँ रहता है. बाद में पता चला कि वह शख़्स तो पुलिस की हिरासत में ही था.

इसी तरह पिछली फ़रवरी में जॉर्जिया राज्य के ब्रंसविक शहर में एक पूर्व पुलिस अफ़सर ने सड़क पर दौड़ लगा रहे निहत्थे काले युवक, अहमद आर्बरी को गोली मार दी थी.

इन तीनों घटनाओं में जॉर्ज फ़्लॉएड की हत्या शायद सबसे निर्मम थी और सरेआम की गई थी, इसलिए वह जनाक्रोश की लहर का कारण बनी। हत्या के वीडियो को ध्यान से देखें तो जॉर्ज फ्लॉएड की गरदन पर अपना घुटना गड़ाने वाले डेरेक का अंदाज़ कुछ ऐसा वीभत्स नज़र आता है, मानो गोरे अधिनायकवाद ने काले अस्तित्व की गरदन में अपना घुटना गाड़ रखा हो. नरहत्या जैसे अपराध में खुद को बड़ा समझने की इस भावना की जड़ें उस अंधी न्याय प्रणाली और पुलिस वालों को दिए जाने वाले प्रशिक्षण में हैं, जो नस्लवादी ज़माने से बिना किसी ख़ास बदलाव के चला आ रहा है. अमरीका में पुलिस को सेना की तरह जूझने का प्रशिक्षण तो दिया जाता है, लेकिन समाज का भरोसा जीतने का नहीं. समस्या के कारण को जाँचने-परखने से पहले गोली चला देने की परंपरा है और न्याय व्यवस्था ऐसी है कि पुलिस वालों पर जुर्म लगाना और उसे साबित करना किसी सरकार को गिराने से कम कठिन नहीं है, सज़ा दिला पाना तो बहुत बड़ी बात है. पुलिस वाले भी उन्हीं पूर्वाग्रहों के दायरे में रहकर काम करते हैं, जो गोरे समाज में मौजूद हैं. समाज के पूर्वाग्रह कम दिखाई पड़ते हैं पुलिस के ज्यादा, क्योंकि वे प्रदर्शनों, मुठभेड़ों और जॉर्ज फ्लॉएड जैसे लोगों की हत्याओं के ज़रिए सामने आ जाते हैं.

नेताओं का काम लोगों को ऐसे पूर्वाग्रहों से ऊपर उठने के लिए प्रेरित करना होता है. ख़ासकर विश्वव्यापी विपदाओं की घड़ी में. कोविड-19 की महामारी की सबसे बुरी मार अमरीका के काले अफ्रीकावंशी लोगों पर पड़ी है. जनसंख्या के अनुपात के हिसाब से, महामारी से मरने वाले काले समुदाय के लोगों की संख्या, गोरे समुदाय के लोगों की तुलना में दो से तीन गुना बताई जाती है. महामारी की वजह से रोज़गार खोने वाले चार से पाँच करोड़ लोगों में भी कालों की संख्या गोरों की तुलना में दो से तीन गुना अधिक है. ऊपर से नस्लवादी भेदभाव और पुलिस तथा न्याय व्यवस्था की मार बरसों से दबे आ रहे रोष को बाहर लाने के लिए काफ़ी है.

ऐसे में राष्ट्रपति ट्रंप के कुछ ग़ैर जिम्मेदाराना ट्वीटों ने आग में घी का काम किया है. मिनियापोलिस में दंगे भड़कते ही ट्रंप ने ट्वीट किया था – when the looting starts, the shooting starts – यानी लूटपाट शुरू होते ही गोलियाँ चलाई जाती हैं. ट्विटर ने इस ट्वीट को हिंसा भड़काने वाला उकसाऊ ट्वीट घोषित कर इसके साथ एक चेतावनी लगा दी थी. क्योंकि यह नारा मार्टिन लूथर किंग के नागरिक अधिकार आंदोलन के दिनों का है. यह काले प्रदर्शनकारियों को गोली मार देने का शौक़ रखने वाले मायामी के नस्लवादी पुलिस प्रमुख वॉल्टर हैडली और सामाजिक अलगाववाद के पक्षधर, राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार जॉर्ज वैलस का नारा हुआ करता था। ट्विटर के अधिकारियों ने महसूस किया कि ट्रंप साहब पुलिस को और गोरे अधिनायकतावादी समर्थकों को प्रदर्शनकारियों पर गोलियाँ चलाने के लिए उकसा रहे थे. हालाँकि ट्रंप ने इस आरोप का खंडन करने की कोशिश की और ट्विटर को डराने धमकाने की भी. लेकिन ट्विटर अपनी राय पर कायम रहा.

उसके बाद जब विरोध प्रदर्शन ट्रंप के अपने घर और राष्ट्रपति आवास तक आ पहुँचे और लोगों ने ट्रंप टावर और व्हाइट हाउस का घेराव किया तो ट्रंप ने एक ट्वीट और कर दिया. इस बार उन्होंने कहा यदि प्रदर्शन करने वालों ने ख़ुफिया सेवा के घेरे को लाँघने की कोशिशें कीं तो–they will be greeted with the most vicious dogs and most vicious weapons–यानी उन पर बेहद ख़ूँखार कुत्ते और घातक हथियार छोड़ दिए जाएँगे।

इस फिकरे का इतिहास भी नस्लवादी ज़माने के नागरिक अधिकार आंदोलन से जुड़ा है. साठ के दशक में एलबामा राज्य के शहर बर्मिंघेम का एक नस्लवादी जनसुरक्षा आयुक्त होता था, युजीन बुल कॉनर. वह काले प्रदर्शनकारियों पर पुलिस के कुत्ते और दमकल गाड़ियों की पनतोपें छोड़ने का शौक़ीन था. ट्रंप ने एक बार फिर अपने ट्वीट पर कुछ सफ़ाई देने की कोशिश की, लेकिन अफ्रीकी देशों को शिट होल का नाम देने और काले और लातीनी लोगों के लिए तरह-तरह के घटिया विशेषणों का प्रयोग करने के उनके इतिहास को देखते हुए उनके स्पष्टीकरण को कौन मानने को तैयार होगा?

अमरीका इस समय बेहद बुरे दौर से गुज़र रहा है. कोविड-19 की महामारी ने एक लाख छह हज़ार लोगों की जान ले ली है और साढ़े अठारह लाख लोगों को वायरस लगने की जानकारी मिल चुकी है. चार करोड़ लोग बेरोज़गारी भत्ते की लाइन में लग चुके हैं और न जाने कितने लाख लोग ऐसे अप्रवासी हैं, जिनकी रोज़ी चली गई है, फिर भी वे उन लाइनों में नहीं लग सकते. ऐसे समय में लोगों के दिलों में सदियों के भेदभाव और शोषण से बैठे डर को दूर करने के लिए सहानुभूति और सद्भावना के दो शब्द कहने के बजाय, यदि आपका नेता ख़ूँखार कुत्ते और घातक अस्त्र छोड़ने की धमकियाँ देने लगे तो लोगों के घाव कैसे भरेंगे?

कहाँ तो आप मीडिया को आज़ादी दिलाने और लोगों को अभिव्यक्ति और विरोध की आज़ादी दिलाने के लिए दूसरे देशों पर आर्थिक और सांस्कृतिक प्रतिबंध थोपते फिरते हैं, कहाँ आप ख़ुद ही सामाजिक मीडिया और जनसंचार माध्यमों को डराने धमकाने पर उतर आए हैं। कहाँ आप हांगकांग के प्रदर्शनकारियों की आज़ादी के लिए चीन के साथ दुश्मनी मोल लेने के ऐलान करते हैं और कहाँ अपने घर में अपने ही आवास पर विरोध प्रदर्शन करने आए अपने ही लोगों पर ख़ूँख़ार कुत्ते और हथियार छोड़ने की धमकियाँ देते हैं।

इसी चिंता में डूबे लेखकों और विश्लेषकों ने नेतृत्वहीनता के आतंक पर लिखा है. ऐसी घड़ी में, जब दुनिया को ऊँचे क़द के विश्वनेताओं की सख़्त ज़रूरत थी, उसी समय बौने नेताओं की जमात हावी हो गई है. कोई विश्व स्वास्थ्य संगठन को भंग कर देना चाहता है. कोई यूरोपीय संघ को भंग कर देना चाहता है. ऐसी घड़ी में, जबकि हर हाथ को रोज़गार, हर पेट को रोटी की चिंता सता रही है, हर देश कर्ज के बोझ से दबा जा रहा है और हर तरफ़ महामारी का साया फैलता जा रहा है. इस घड़ी में जिसे देखिए, भाईचारे का हाथ बढ़ाने के बजाय दीवारें खड़ी करने की फिराक में है। जब कोई किसी की मदद को ही नहीं आएगा तो विश्वव्यापी समस्याओं का समाधान कैसे हो पाएगा?

-मीडिया स्वराज

कहां हो ईश्वर!

❑ ध्रुव गुप्त

सृष्टि के आरम्भ से ही पृथ्वी के आयामों से परे एक ईश्वरीय सत्ता पर किसी न किसी रूप में लोगों का भरोसा रहा है। एक ऐसी अलौकिक सत्ता, जिसने इस ब्रह्माण्ड की रचना की और जो इसका संचालन करती है। जिसे हमारे सुख-दुख का ज्ञान है और हमारी जरूरतों की समझ है। हमारी दृष्टि की पहुंच से बाहर रहने वाला ऐसा अभौतिक अस्तित्व, जिसे खुश करके हम इस जीवन में भी और मरने के बाद उसके स्वर्ग में भी तमाम सुख-सुविधाएं हासिल कर सकते हैं। अगर अपने कर्मों से हमने उसे नाराज़ कर दिया तो जीते जी हम पर दुखों का पहाड़ तो टूटेगा ही, मृत्यु के बाद उसके बनाए नर्क की यातनाएं भी झेलनी पड़ सकती हैं। अगर ईश्वर का अस्तित्व है तो हमें नहीं पता कि उसने पृथ्वी पर हमारी कोई भूमिका तय की है या अपनी भूमिका हमें खुद ही तय करनी है। आजतक हमारे जीवन, उसके उद्देश्यों, नैतिकता और धार्मिकता को लेकर जितना कुछ कहा और लिखा गया, वह सब हमने ही कहा और लिखा है, किसी ईश्वरीय सत्ता ने नहीं। कोरोना वायरस जनित महामारी के इस दौर में उसे लेकर एक बार फिर बहस शुरू हो गई है। मौत के भयावह आंकड़ों के बीच जब हम मनुष्य ही नहीं, स्वयं ईश्वर भी अपने पूजा-स्थलों में बंद है, तो यह सवाल उठना लाज़िमी है कि क्या सचमुच इस दुनिया का नियंता कोई ईश्वर है भी या नहीं? हमारी दुनिया के निर्माण और संचालन में यदि सचमुच उसकी कोई भूमिका है तो उसने अपनी ही कृतियों या संतानों को इस पृथ्वी पर मरने के लिए अकेला और असहाय क्यों छोड़ दिया है? दुनिया में आए दिन घटती महामारियों, नृशंसता, अराजकता और प्रलय की तमाम आशंकाओं ने नास्तिकों के इस भरोसे को मजबूती दी है कि इस दुनिया का कोई ईश्वर नहीं है।

ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करने वाले लगभग तमाम धर्मों के पास हर तरफ फैली अराजकता और दुनिया पर उपस्थित खतरे के बारे में अपने तर्क हैं। उनकी दृष्टि में विनाश का कोई भी चक्र ईश्वर की अनुपस्थिति का नहीं, नवनिर्माण की उसकी योजनाओं का हिस्सा है। सृष्टि के लंबे दौर के बाद प्रलय की परिकल्पना दुनिया के हर धर्म में मौजूद है। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार यह संक्रमण का युग है। सतयुग, त्रेता युग, द्वापर युग और कलियुग का समय-चक्र समाप्ति की ओर है। कलियुग का यह अंतिम चरण है, जिसमें पाप, अन्याय, दुराचार और अधर्म ने समूची पृथ्वी को आच्छादित कर लिया है। पुराणों के अनुसार यह विष्णु के दसवें अवतार कल्कि के आगमन का समय है। कल्कि अवतार दुनिया के पाप और पापियों का नाश कर सतयुग के आरंभ की भूमिका तैयार करेंगे। इस्लाम में भी दुनिया में पाप और अन्याय बढ़ जाने के बाद एक महदी के अवतरण की घोषणा है। दुनिया के कई दूसरे धर्मों में भी प्रलय के बाद एक बेहतर मानवीय सृष्टि के संकेत मिलते हैं।

पारंपरिक आस्तिकों और नास्तिकों से इतर दुनिया में ऐसे लोगों का एक बड़ा वर्ग है, जिसे ईश्वर का अस्तित्व तो स्वीकार है, लेकिन वह यह नहीं मानता कि पृथ्वी पर जो कुछ भी अवांछित, अनिष्ट और अन्यायपूर्ण हो रहा है, उसके लिए ईश्वर जिम्मेदार है। ऐसे लोगों का मानना है कि ईश्वर के पास चलाने के लिए असीम ब्रह्मांड है। पृथ्वी उस ब्रह्मांड का बहुत छोटा, लेकिन खूबसूरत हिस्सा है। ईश्वर ने मनुष्यों को बुद्धि-विवेक, प्रेम, करुणा, सहानुभूति जैसे ईश्वरीय गुण देते हुए इसे चलाने, बचाने, संवारने का भार सौंप रखा है। पृथ्वी पर आज जो भी गंदा है, जहरीला है, बीमार है, विनाशक है, अन्यायपूर्ण है, वह ईश्वर की नहीं, हम मनुष्यों के बेहिसाब लोभ, असीम महत्वाकांक्षाओं और विकास की गलत दिशा की देन है। हमारी अपनी भूलों से आज पृथ्वी पर उसके जीवन का सबसे बड़ा संकट उपस्थित है। हमारे विध्वंसक प्रयोगों और खान-पान की बुरी आदतों के कारण लगातार वायरस-जन्य महामारियां फैल रही है। इस सिलसिले की सबसे नई कड़ी कोरोना महामारी शायद अंतिम चेतावनी है हम सबके लिए। जो संकट हमारी दुनिया के सामने उपस्थित है, उससे बाहर निकालने के लिए व्यक्ति या अवतार के रूप में ईश्वर कहीं बाहर से नहीं आने वाला। वह हमारे भीतर ही है।

अपने भीतर मौजूद ईश्वर की पहचान, उसकी सृष्टि से संपूर्ण तादात्म्य और उससे उत्पन्न संवेदना, प्रेम और करुणा ही ईश्वरत्व की प्राप्ति का रास्ता है। हमारी यह प्रकृति स्वयं ईश्वर की प्रतिछवि है। अपनी प्रकृति और पृथ्वी के साथ पिछली एक सदी में हमने बहुत अनाचार किए हैं। हमारी असंख्य मूर्खताओं के कारण अब वह अपने अस्तित्व के संकट से दो-चार है। उसके तमाम अहसानों के बदले हम और कुछ नहीं तो उसकी उम्र और सौंदर्य बढ़ाने का जतन तो कर ही सकते हैं। इसके जंगल और वृक्ष इसे लौटाकर, इसके दामन में कुछ और फूल खिलाकर, इसकी हवा में प्राण फूंककर, अपनी नदियों को अविरल और निर्मल बनाकर और पृथ्वी के सभी जीव-जंतुओं के साथ करुणा दिखाकर। ऐसा हम कर सकते हैं, यह विश्वव्यापी लॉकडाउन के कुछ ही दिनों में साबित हुआ है। परिदृश्य से कुछ ही अरसे के लिए हमारे हट जाने से इस पृथ्वी का वातावरण बदला है। जो लोग इस विपदा से बचे रहेंगे, उन्हें इससे थोड़ी बेहतर दुनिया मिलने की उम्मीद जरूर बंधी है और यह समझ भी पैदा हुई है कि आने वाले समय में हमें अपनी पृथ्वी और उसके पर्यावरण के साथ कैसा सलूक करना है।

एक अदृश्य वायरस से हमें बचाने कोई ईश्वर नहीं आया। इसका मतलब यह नहीं कि ईश्वर नहीं है। इसका मतलब सिर्फ़ यह है कि वह दुनिया के कामों में हस्तक्षेप नहीं करता। उसने हम पर छोड़ दिया है कि हम अपनी दुनिया को बचा कर रखें या किश्तों में इसे बर्बाद कर डालें। हम इसे नहीं बचा पाए तो प्रलय होगी और इंसानों की कोई बेहतर प्रजाति इस धरती पर आएगी। यही जीवन-चक्र है। यही सृष्टि-चक्र है। अगर मृत्यु के बाद भी जीवन होता है, तो हमारे मरने के बाद हमारा फैसला इस आधार पर नहीं होगा कि हमने ईश्वर की कितनी स्तुतियां गाईं, बल्कि इस आधार पर होगा कि उसकी दी हुई दुनिया को हमने कितना खूबसूरत बनाया। हमने अपने साथी मनुष्यों और दूसरे जीव-जंतुओं, पक्षियों, वनस्पतियों से हमारे रिश्ते कितने सौहार्दपूर्ण रहे। जीवनदायिनी पृथ्वी, उसके पेड़-पौधों, उसकी नदियों, हवा और आकाश के साथ हमने कैसा सलूक किया। जैसे हमारी तलाश एक संपूर्ण ईश्वर की रही है, ईश्वर की खोज भी एक संपूर्ण मनुष्य की है, जो अब तक पूरी नहीं हुई है। सृष्टि के निर्माण और विनाश की अनवरत प्रक्रिया शायद ईश्वर की उसी जद्दोज़हद का हिस्सा है। ❑

(लेखक अवकाशप्राप्त आईपीएस अधिकारी हैं।)

कोविड-19
हिन्दी पट्टी में कोई सवाल क्यों नहीं है?

❑ प्रमोद रंजन

फरवरी, 2020 में जब अखबारों में दुनिया में एक नए वायरस के फैलने की सूचना आने लगी और मेरे सहकर्मियों के बीच इसकी चर्चा होने लगी तो मैंने इन खबरों के संबंध में प्रामाणिक सूचनाएं पाने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन की वेबसाइट का रुख किया था।

यह वह समय था, जब हम मज़ाक-मज़ाक में कहा करते थे कि शायद आने वाले समय में हाथ न मिलाकर, एक दूसरे को नमस्कार करना होगा। उस समय कौन जानता था कि जल्दी ही वह दिन आने वाला है, जब ऐसे नियम बना दिए जाएंगे, जिसमें मास्क नहीं पहनने पर दंडित किए जाने का प्रावधान होगा।

उस समय तक कार्यालय में उपस्थिति के लिए बायोमैट्रिक्स पंच मशीन लगाए जाने का जिक्र आने पर हम इसके औचित्य और दुष्परिणामों पर चर्चा किया करते थे। उस समय कौन जानता था कि मोबाइल फोनों में एक जासूसी-एप रखना आवश्यक कर दिया जाएगा और बायोमैट्रिक्स मशीन तो कौन कहे, हम हर प्रकार के सर्विलांस के लिए राजी हो जाएंगे।

मेरे मित्रों का विशाल संसार हिंदी पट्टी की पत्रकारिता, समाज-कर्म और अकादमियों में फैला है, लेकिन इनमें एकाध को छोड़कर कोई भी नहीं है, जो इनके दूरगामी प्रभावों को लेकर चिंतित हो। शहर में चेहरे की पहचान करने वाले कैमरे सड़कों पर लगा दिए गए हैं, नागरिकों पर निगरानी रखने के लिए कैमरे लगे ड्रोनों का इस्तेमाल किया जा रहा है।

सोचता हूं कि हमारी हिंदी पट्टी में सवाल उठाने वालों की इतनी कमी क्यों है? यह कमी की ध्वनि हमारी भाषा में भी झलकती है। इसमें ऐसे शब्दों का टोटा है, जो इस सर्वसत्तावाद और सर्विलांस के खतरे को ठीक से व्यक्त कर सके। क्या इसकी जड़ें हमारे किसी छुपे हुए संस्कार में है?

एक बीमारी आई, जिसे महामारी कहा गया और हम पर कथित 'विशेषज्ञता' और 'वैज्ञानिक तथ्यों' की बमबारी की जाने लगी। हम घबराकर घरों में दुबक गए, लेकिन क्या हमें इस बमबारी के स्रोत और उद्देश्यों की ओर नहीं देखना चाहिए था? हमें बताया गया कि दुनिया भर में यही हो रहा है। लेकिन इंटरनेट के जमाने में यह जानना हमारे लिए संभव नहीं था कि दुनिया में कहीं भी अपने नागरिकों पर ऐसा कहर नहीं ढाया जा रहा है।

भारत के विश्वगुरू होने का सबसे अधिक दावा हिंदी पट्टी से उठता है, जिसके आधार हममें से कुछ वेदों में तो कुछ बौद्ध दर्शन में तलाशते हैं। हमने यह क्यों नहीं कहा कि हमें दूसरों का पिछलग्गू नहीं बनना है? हमें कहा गया कि यह बीमारी जानलेवा है, और हमने मान लिया। **हम यह देखने की कोशिश क्यों नहीं कर रहे कि इसी हिंदी पट्टी में टीबी, चमकी बुखार, न्यूमोनिया, मलेरिया आदि से मरने वालों की संख्या कितनी है। एक अनुमान के मुताबिक इन बीमारियों से सिर्फ हिंदी पट्टी में हर साल 5 से 7 लाख लोग मरते हैं।**

हमें बताया गया कि यह बीमारी बहुत तेजी से फैलती है, लेकिन हम यह क्यों नहीं देख रहे कि इसकी संक्रमण-दर टीबी से पांच गुना कम है। हमें कहा गया कि इससे बहुत सारे लोग मर रहे हैं। हमने यह देखने की कोशिश क्यों नहीं की कि इन्हीं कुछ महीनों में हमारे आसपास कितने लोग कोविड से मरे और कितने लोग लॉकडाउन से?

हमें कहा गया कि यह खतरनाक है, क्योंकि यह 'वायरस' से होता है और लाइलाज है। **हमने क्यों यह सवाल नहीं उठाया कि हिंदी पट्टी के सैकड़ों गरीब बच्चों को मारने वाला चमकी बुखार एवं जापानी इंसेफ्लाइटिस भी वायरस से होता है और यह भी लाइलाज है। कोविड-19 की अधिकतम मृत्यु दर हमें 3 प्रतिशत से कम बताई गई, जबकि इन बुखारों में मृत्यु दर 30 प्रतिशत से भी अधिक है। हमने क्यों नहीं पूछा कि गरीबों को मारने वाली बीमारियों से संबंधित आंकड़ों को छुपाने के जो आरोप भारत सरकार पर रहे हैं, उनका सच क्या है? हम यह सवाल क्यों नहीं उठा रहे कि न्यूमोनिया, इंफ्लुएंजा और हृदयाघात आदि से मरने वालों की संख्या को क्यों कोविड-19 की मौतों में जोड़ा जा रहा है? इन भ्रामक आंकड़ों से किनके खिलाफ युद्ध लड़ा जा रहा है?**

हमें कहा जा रहा है कि यह विश्व स्वास्थ संगठन के दिशानिर्देशों पर हो रहा है। तो हम उनसे यह क्यों नहीं पूछ रहे कि इस संगठन की विश्वसनीयता कितनी है? क्या यह झूठ है कि इस संगठन पर बिग फर्मों के हितों का ख्याल रखने के आरोप हैं?

इस संबंध में जर्मनी में शोधरत मेरे एक मित्र रेयाज-उल-हक ने एक मेल में जो लिखा है, उसे यहां दे देना प्रासंगिक होगा। उन्होंने मेरा ध्यान इस ओर दिलाया है कि 'गरीब देशों में होने वाली इन बीमारियों की विश्व स्वास्थ्य संगठन आदि द्वारा की जाने वाली उपेक्षा की वजह यह है कि पश्चिमी देशों ने इन बीमारियों और उनकी वजहों पर कमोबेश क़ाबू पा लिया है। साफ़ पानी की आपूर्ति, पोषण, पर्याप्त भोजन, स्वस्थ जीवन शैली, मज़बूत स्वास्थ्य सेवाएँ और इलाज की सुविधा से युक्त ये देश अब हैज़ा, टीबी आदि से परेशान नहीं होते। मलेरिया और यहाँ तक कि एड्स भी अब कोई बड़ी मुश्किल नहीं है इन देशों के लिए। लेकिन वे उन बीमारियों से डरते हैं, जिन पर इनकी कोई पकड़ नहीं है। इसलिए ये संक्रामक सार्स और कोरोना से डर जाते हैं, क्योंकि अभी इनके पास उसका कोई उपाय नहीं है। चूंकि इन पश्चिमी देशों का दुनिया में दबदबा है, इसलिए इनकी प्राथमिकताएँ सब लोगों की प्राथमिकताएँ बन जाती हैं। इसलिए अब कोरोना सबके लिए ख़तरा है। एक बार इसका टीका और इलाज

इनको मिल जाने दीजिए, फिर कोरोना से कौन मरता और जीता है दुनिया में, इनको इसकी कोई परवाह भी नहीं होगी। आज यह यूरोप और अमेरिका की बीमारी है। जब तक यह चीन तक सीमित थी, इनको इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ रहा था।' हम उनसे क्यों नहीं पूछ रहे कि इन यूरोपीय देशों की समस्याओं को आपने हमारे सिर पर क्यों थोप दिया? इसके अलावा, हम उनसे यह भी तो पूछ सकते हैं कि आप सोशल-मीडिया पर कथित तौर पर कथित 'इंफोडेमिक' फैलाने वालों पर कार्रवाई कर रहे हैं, लेकिन उन मीडिया संस्थानों पर क्यों कोई कार्रवाई नहीं कर रहे, जो विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कही गई बातों को चुनिंदा रूप में प्रकाशित व प्रसारित करते हैं?

पिछले चार महीने से डबल्यू.एच.ओ. कोविड-19 के संबंध में रोजना प्रेस बीफिंग करता है। इस वर्चुअल प्रेस ब्रीफिंग का प्रसारण उसके मुख्यालय, जेनेवा से उसके सोशल मीडिया प्लेटफार्मों पर होता है, जिसमें दुनिया भर से पत्रकार भाग लेते हैं। इस ब्रीफिंग के दौरान संगठन के डायरेक्टर जनरल टेड्रोस अदनोम घेब्रेयसस ने जब-जब भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की तारीफ की है, तब-तब भारत के समाचार-माध्यमों में प्रसन्नता से खिली हुई खबरें विस्तार से प्रसारित हुई हैं।

30 मार्च को किसी भारतीय पत्रकार ने इस प्रेस ब्रीफिंग में डबल्यू.एच.ओ. के पदाधिकारियों से कहा कि 'आपको ज्ञात होना चाहिए कि भारत लॉकडाउन के दौरान अपने प्रवासी मजदूरों के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में जाने को लेकर अभूतपूर्व मानवीय संकट देख रहा है। मैं यह जानता हूं कि आपको किसी देश विशेष पर टिप्पणी करना पसंद नहीं है, लेकिन यह एक अभूतपूर्व मानवीय संकट है। हमारी सरकार को आपकी क्या सलाह होगी?' डबल्यूएचओ के एग्ज़ीक्यूटिव डायरेक्टर माइकल जे. रयान ने इस प्रश्न के उत्तर में लॉकडाउन का समर्थन किया लेकिन यह भी कहा कि देशों को अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं को देखते हुए सख्त या हल्का लॉकडाउन लगाना चाहिए और हर हाल में प्रभावित लोगों के मानवाधिकार का सम्मान करना चाहिए। माइकल रयान के बाद संगठन के डायरेक्टर जनरल डॉ. टेड्रोस ने भी भावुकता भरे शब्दों में कहा कि 'मैं अफ्रीका से हूं, और मुझे पता है कि बहुत से लोगों को वास्तव में अपनी रोज रोटी कमाने के लिए हर रोज काम करना पड़ता है। सरकारों को इस आबादी को ध्यान में रखना चाहिए। मैं एक गरीब परिवार से आता हूं और मुझे पता है कि आपकी रोजी-रोटी की चिंता करने का क्या मतलब है! सिर्फ जी.डी.पी. के नुकसान या आर्थिक नतीजों को ही नहीं देखा जाना चाहिए। हमें यह भी देखना चाहिए कि गली के एक व्यक्ति के लिए लॉकडाउन का. क्या अर्थ है! मेरी यह बात सिर्फ भारत के बारे में नहीं है,यह दुनिया के सभी देशों पर लागू होती है।'

विश्व स्वास्थ्य संगठन के इस बयान को भारतीय मीडिया में कहीं जगह नहीं मिली। लेकिन इस बयान के बाद भारत सरकार सक्रिय हुई और लॉकडाउन के दौरान उठाए गए कथित कदमों को प्रेस ब्रीफिंग में रखने के लिए डब्ल्यूएचओ पर दबाव बनाया। परिणामस्वरूप 1 अप्रैल, 2020 की प्रेस ब्रीफिंग में डब्ल्यूएचओ प्रमुख डॉ. टेड्रोस ने भारत सरकार द्वारा जारी किए गए राहत पैकेज के बारे में जानकारी दी। यह वह पैकेज था, जिसे भारत सरकार पांच दिन पहले 26 मार्च को ही घोषित कर चुकी थी।

टेड्रोस ने कहा कि 'भारत में, प्रधानमंत्री मोदी ने 24 बिलियन अमेरिकी डॉलर के पैकेज की घोषणा की है, जिसमें 800 मिलियन वंचित लोगों के लिए मुफ्त भोजन, राशन; 204 मिलियन गरीब महिलाओं को नकद राशि हस्तांतरण और 80 मिलियन घरों में अगले 3 महीनों के लिए मुफ्त खाना पकाने की गैस शामिल है।' इसके अलावा इंडिया टुडे के पत्रकार अंकित कुमार के एक प्रश्न के उत्तर में माइकल रयान ने कहा कि भारत में लॉकडाउन के परिणामों के बारे में कुछ भी कहना जल्दबाजी होगी, लेकिन 'जो जोखिम में हैं, उन पर लॉकडाउन के प्रभावों को सीमित करने के लिए भारत ने बड़ा प्रयास किया है।'

अगले दिन भारत के सभी हिंदी–अंग्रेजी समाचार माध्यम इस खबर से पटे पड़े थे कि डबल्यू.एच.ओ. ने प्रधानमंत्री मोदी की तारीफ की है और कहा है प्रधानमंत्री मोदी द्वारा कोरोना के खिलाफ उठाए गए कदम अच्छे हैं। अनेक न्यूज चैनलों ने डबल्यू.एच.ओ. के वक्तव्य की रिपोर्टिंग करते हुए यहां तक कहा कि 'कोरोना वायरस को कैसे रोका जाए, इसके लिए पी.एम. मोदी और उनके विशेषज्ञों की एक टीम लगातार काम कर रही है। 21 दिन के लॉकडाउन का फैसला भी पी.एम. मोदी ने अपनी इसी टीम की सलाह पर लिया है। प्रधानमंत्री हर रोज करीब 17-18 घंटे काम कर रहे हैं। कोरोना के खिलाफ संघर्ष में विश्व स्वास्थ्य संगठन भी पी.एम. मोदी और भारत की तारीफ कर चुका है।' ये वही मीडिया संस्थान थे, जिन्होंने डब्ल्यूएचओ द्वारा दी गई मानवाधिकारों का ख्याल रखने की सलाह को प्रकाशित करने से परहेज किया था।

लॉकडाउन से दुनिया के अनेक देशों की बर्बादी के बाद अब विश्व स्वास्थ्य संगठन कह रहा है कि उसने लॉकडाउन की सलाह नहीं दी थी। हम अपनी सरकार से क्यों नहीं पूछ रहे हैं कि भारत जैसे गरीबों की विशाल जनसंख्या वाले देश में, जहां अधिकांश लोग रोज की रोटी कमा कर खाते हैं, वहां लॉकडाउन का मतलब क्या होगा, अगर आपको यह पता नहीं था, तो आपके निर्देशों के सही साबित होने की क्या गारंटी है? स्वीडन, जापान, तंजानिया, बेलारूस, निकारागुआ, यमन आदि देशों ने या तो बिल्कुल लॉकडाउन नहीं किया या फिर ऐसे नियम बनाए, जिनसे नागरिकों की स्वतंत्रता कम से कम बाधित हो। भारत इस राह पर क्यों नहीं चला?

हम क्यों नहीं पूछ रहे कि जब कई देशों ने मास्क को जनता के लिए आवश्यक नहीं बनाया है और कोविड-19 के अधिक फैलने के कोई प्रमाण नहीं हैं, तो आपके पास इसके लिए कौन-सा 'वैज्ञानिक' आधार है? हम क्यों नहीं पूछ रहे हैं कि क्या यह वायरस निशाचर है, जो आपने रात का कर्फ्यू लगाया है? इसका क्या वैज्ञानिक आधार है? आप क्यों भय को बरकरार रखना चाहते हैं?

आप कहते हैं कि आपको भारत की जनता पर भरोसा नहीं है। यह अशिक्षित, अविवेकी, अराजक है, यूरोप की तरह सभ्य नहीं है। आपके पास इसके पक्ष में क्या प्रमाण

हैं? क्या यह सच नहीं है कि देशव्यापी लॉकडाउन से पहले ही भारत में लोगों ने बाहर निकलना बहुत कम कर दिया था? लॉकडाउन से पहले ही कम सवारी मिलने के कारण सैकड़ों ट्रेनें कैंसिल करनी पड़ीं थीं। यह देशवासियों के उस अनुशासन और विवेक का परिचायक था। इसके बावजूद उन पर लॉकडाउन क्यों थोपा गया?

हमें यह सवाल भी अवश्य ही उठाना चाहिए कि सच जानने के हमारे जन्मसिद्ध अधिकार को किस एक्ट के तहत बाधित किया जा रहा है? हम क्यों नहीं पूछ रहे कि इंडियन कौंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च का बिल एंड मिलिंडा गेट्स फ़ाउंडेशन से क्या रिश्ता है?

कोविड-19 से संबंधित डबल्यू.एच.ओ. की जिस प्रेस ब्रीफिंग का जिक्र मैंने आरंभ में किया, उसमें 10 अप्रैल, 2020 को स्विटज़रलैंड की एक न्यूज वेबसाइट 'द न्यू ह्यूमनटेरियन' के संपादक और सह-संस्थापक बेन पार्कर ने बिल गेट्स के बारे में एक सवाल पूछा था। डबल्यू.एच.ओ. के पदाधिकारियों ने उनके प्रश्न का उत्तर जिस तत्परता से दिया, वह तो देखने लायक था ही, साथ ही प्रश्नकर्ता के बारे में पड़ताल से यह भी संकेत मिलता है कि कितने-कितने छद्म तरीकों से बिल एंड मिलिंडा गेट्स फाउंडेशन के पक्ष में खबरों के प्रसारण को सुनिश्चित किया जा रहा है। बेन पार्कर ने पूछा था कि 'हम बिल एंड मिलिंडा गेट्स फाउंडेशन, वैक्सीन और आईडी 2020 नामक एक डिजिटल पहचान परियोजना के आस पास बहुत-सी अफवाहों के साथ-साथ एक कांस्पीरेसी थ्योरी देख रहे हैं। क्या आप इन नई भ्रामक सूचनाओं पर नजर रख रहे हैं तथा इन्हें हटाने के लिए कुछ कर रहे हैं?'

इस प्रश्न के उत्तर में माइकल रयान ने कहा कि हम बिल एंड मिलिंडा गेट्स फाउंडेशन के कृपापूर्वक समर्थन के लिए आभारी हैं। हम निश्चित रूप से उस प्लेटफार्म को देखेंगे, जिसका आपने उल्लेख किया है। हम लगातार भ्रामक सूचनाओं से निपटने के लिए कदम उठा रहे हैं तथा उन्हें हटाने के लिए डिजिटल क्षेत्र की कई कंपनियों के साथ काम कर रहे हैं।

क्या कसूर है उनका!

❑ शिविका प्रणव जैन

क्या कसूर है उनका,
जो पैदल चले जा रहे हैं!
पैरो में पड़ रहे छाले, फिर भी चले जा रहे हैं
मन में एक आस लिए, मिले वो घर का आंगन
पेट में भूख लिये चल रहे हैं वे,
ऐसी कड़कती धूप में भी,
चले जा रहे हैं।
कल का सूरज देख भी पाएंगे या नहीं,
फिर भी चले जा रहे हैं।
क्या कसूर है उनका,
जो चले जा रहे हैं कोसों दूर?
मंजिल कब आयेगी उनको भी नहीं पता,
पहुंच भी पायेंगे मजिल तक, यह भी नहीं पता,
बस चले जा रहे हैं, मन में आस लिए।
जो भी हो अंजाम,
बस अपने घर पहुँच जाएं,
इसी आस में चले जा रहे हैं।
नन्हें नन्हें पैरों को चलते देखा,
औरतों की मासिक धर्म की पीड़ा,
प्रसव की पीड़ा...
सब कुछ सहे जा रहे हैं,
शहरों को छोड़
अब गांवों की ओर चले जा रहे हैं,
जाति, धर्म किसी का कोई वजूद नहीं,
वे सिर्फ इंसान हैं,
इंसानियत को ढूंढने चले हैं,
मुसीबतों का पहाड़ तो सिर्फ
इनको ही मिला है।
हर बार की तरह
इस बार भी कीमत चुकाने,
कोसों दूर घर की ओर चल पड़े हैं।
रास्ते में हों चाहे काँटे,
या हों रास्ते पथरीले,
बस घर पहुंचा दो अब हमको।
बंद करो यह सियासत,
मरना भी बस अपने गाँव की मिट्टी में,
भूख की आग लिये
बस चले जा रहे हैं।
यह सब देख कर
मेरे अंदर का इंसान भी बोल पड़ा
अब न देखा जा रहा यह मंजर...
क्या कसूर है उनका,
जो पैदल चले जा रहे हैं!

बेन पार्कर के सवाल पर डॉ. टेड्रोस ने गेट्स की प्रशंसा के पुल बांध दिए। उन्होंने कहा कि 'मैं अनेक वर्षों से बिल और मिलिंडा को जानता हूं। ये दोनों मनुष्य अद्भुत हैं। मैं आपको आश्वस्त करना चाहता हूं कि इस कोविड-19 महामारी के दौरान उनका समर्थन वास्तव में बड़ा है। हमें उनसे वह सभी सहायता मिल रही है, जिसकी हमें आवश्यकता है। हमारा साझा विश्वास है कि हम इस तूफान को मोड़ सकते हैं। गेट्स परिवार के योगदान से दुनिया परिचित है, उन्हें प्रशंसा और सम्मान मिलना ही चाहिए।

प्रश्नकर्ता बेन पार्कर के बारे में गूगल पर सर्च करने पर पता चलता है कि उनका 'दुनिया भर में मानवीय संकटों से प्रभावित लाखों लोगों की सेवा में स्वतंत्र पत्रकारिता' का संस्थान 'द न्यू ह्यूमनटेरियन' मुख्य रूप से बिल एंड मिलिंडा गेट्स फ़ाउंडेशन के पैसे से चलता है। वह उनका सबसे बड़ा डोनर है। इसकी एवज में प्रश्नकर्ता बेन पार्कर ट्विटर से लेकर अपनी वेबसाइट तक पर बिल गेट्स के पक्ष में कथित 'फैक्ट चेकिंग' में सक्रिय रहते हैं, ताकि गेट्स परिवार को बदनामी के गर्त से बाहर निकाला जा सके।

भारत में भी इस कथित महामारी के दौर में ऐसी कथित फैक्ट चेकिंग संस्थाएं विदेशी अनुदान से तेजी से बढ़ रही हैं। हमें स्वयं से यह पूछना चाहिए कि सच और झूठ का यह घालमेल इतनी तेजी से क्यों बढ़ रहा है? क्या इसके लिए सिर्फ सरकार जिम्मेवार है, या हम स्वयं अपनी गुलामी के अनुबंध पर लगातार हस्ताक्षर करते जा रहे हैं? ❑

आपदा को अवसर बनाने में मशगूल सरकार

❑ दीपचंद सांखला

कोरोना वायरस के संक्रमण से विश्वव्यापी महामारी कोविड-19 गरीब और भारत जैसे उन देशों के लिए अभिशाप बनकर आयी है, जिनकी लगभग आधी आबादी अभावों में गुजर-बसर करती है। ऐसे में देश के शासक यदि नाकारा और हेकड़ीबाज हों तो कोढ़ में खाज का काम करते हैं। विश्वव्यापी संक्रमण के बाद विदेश से भारत आये 15 लाख लोगों के साथ वायरस को, जहां निर्बाध आने दिया गया, वहीं बिना भारत की जरूरत, डोनल्ड ट्रंप को बुलाकर मानो हमने कोरोना वायरस की ही आवभगत की। देश में वायरस का संक्रमण लगातार फैलते-फैलते सामुदायिक संक्रमण की स्थिति में आ गया है। देश के सभी महानगरों की घनी आबादी वाले क्षेत्रों की स्थितियां बद से बदतर होती जा रही हैं। भ्रष्टाचार और अकर्मण्यता के चलते लगभग जर्जर हो चुकी सरकारी क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवा हाथ खड़े करने की स्थिति में है। पर्याप्त अस्पतालों का अभाव तो दिख ही रहा है लेकिन जो हैं भी, उनकी स्थिति ऐसी नहीं हैं कि इस बढ़ते संकट के समय काम आ सकें। पिछले तीन दशकों से फैली निजी क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवाएं भी पर्याप्त नहीं हैं, जो हैं उन्होंने कोविड-19 के इलाज के लिए पैकेजों की घोषणा कर दी है। पैकेजों पर नजर डालें तो वहां इलाज करवाना मध्यम वर्ग तो क्या, उच्च मध्यम वर्ग के लिए भी संभव नहीं है। जबकि एक से दूसरे में फैलने वाले इस संक्रमण की चपेट में पूरा परिवार ही कब आ जाये, कह नहीं सकते।

संक्रमण की शुरुआत में भारत दुनिया के टॉप-50 प्रभावित देशों की सूची से बाहर था। लेकिन टॉप-10 देशों की सूची में कब आ गया, पता ही नहीं चला। अब हम टॉप पर पहुंचने वाले हैं। लेकिन सुकून की बात यह है कि हम भारतीयों की रोग प्रतिरोधक क्षमता का ही कमाल है कि संक्रमित लोग बिना इलाज केवल निगरानी भर से पॉजिटिव से नेगेटिव हो लेते हैं। यही वजह है कि भारत की रिकवरी रेट अच्छी है।

हमारे यहां कोरोना वायरस के संक्रमण की तुलना में अन्य बीमारियों से ग्रसित और वृद्ध होकर कमजोर हो चुके लोगों की मृत्यु दर ज्यादा है। यह स्थिति तो अब तक थी, लेकिन ज्यों ही सामुदायिक संक्रमण बढ़ेगा, हो सकता है कि यह हमारे बूते से बाहर हो जाए। क्योंकि उस स्थिति में सभी संक्रमितों को इलाज देना तो दूर की बात, उन्हें स्वास्थ्य निगरानी में रखने की पर्याप्त व्यवस्था भी हमारे पास नहीं है। महानगरों के समाचार तो यही बता रहे हैं।

किसी भी महामारी से निपटने के लिए दुरुस्त स्वास्थ्य सेवाओं के बाद दूसरी बड़ी जरूरत आर्थिक संसाधनों की होती है, जो नोटबंदी जैसे मूर्खतापूर्ण कदम के बाद 2017 से ही चरमरा चुके हैं। बची-खुची कमी हड़बड़ी में लागू की गई जीएसटी प्रणाली ने पूरी कर दी। अर्थव्यवस्था के तय मानकों पर देश लगातार पिछड़ ही रहा था कि कोरोना आ धमका। ट्रंप की आवभगत और मध्यप्रदेश में अपनी पार्टी की सरकार बनाने से फ्री होते ही प्रधानमंत्री ने बिना विचारे और बिना योजना के जिस तरह से लॉकडाउन लागू किया, उससे पहले से ही जर्जर हुई अर्थव्यवस्था और चरमराने लगी।

आपदा के इस पूरे समय में केन्द्र सरकार की कोई सक्रियता, सदाशयता नजर नहीं आयी, सिवाय भाषणों के या आईटी सेल के छद्म प्रचार के। इस कोरोना काल की आड़ में पारदर्शी रहे प्रधानमंत्री सहायता कोश की एवज में बिना जरूरत का 'पीएम केयर फण्ड' बना लिया गया। इसमें पारदर्शिता तो दूर की बात, जनता को उसका हिसाब-किताब दिखाने की भी कोई व्यवस्था नहीं है। फंड में कितना धन आया और कितना कहां जा रहा है, इसकी जानकारी नरेन्द्र मोदी और अमित शाह के अलावा किसी को नहीं होगी। दूसरी ओर लॉकडाउन में बन्द हुए राजस्व और कोरोना महामारी से जूझ रहे राज्य आर्थिक पैकेज की मांग लगातार कर रहे हैं, लेकिन केन्द्र जरूरत के अनुसार धन नहीं दे रहा है। नतीजतन लॉकडाउन की अब जब असल जरूरत है, तब राजस्व की जरूरत पर केन्द्र सरकार ने उसे खोलने की छूट दे दी, ताकि राज्य पैकेज के लिए चिल्लाना बन्द कर दें।

लेकिन हुआ क्या, आवश्यक वस्तुओं के अलावा शेष सभी उद्योग और व्यापार अपनी कुल क्षमता या लक्ष्य के 30-35 प्रतिशत भी नहीं चल पा रहे हैं। जबकि आवश्यक वस्तुओं के उद्योग और व्यापार लॉकडाउन के समय में भी चल ही रहे थे। लॉकडाउन के पांचवें चरण की इस छूट ने राजस्व में कितना योगदान दिया, सामने है। इस चरण में स्वास्थ्य विभाग द्वारा बताई गई सावधानियों का उल्लंघन जरूर हो रहा है, इस लापरवाही के परिणाम सामुदायिक संक्रमण के तौर पर सामने आने लगे हैं।

आर्थिक और स्वास्थ्य मोर्चे पर असफल रही केन्द्र सरकार की अपरिपक्वता के चलते अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी भारत की स्थितियां कमजोर हुई हैं। व्यक्तिगत दोस्ती के दबाव में अमेरिका का पिछलग्गू होने का जो संदेश दुनिया में गया, उसके परिणाम आने शुरू हो गये हैं। भारत पर दबाव बनाने के लिए चीन, लद्दाख के लगभग 60 वर्ग किमी क्षेत्र पर कब्जा कर बैठा है, भारत के दबाव में हर बार लौट जाने वाले चीन की मंशा इस बार ठीक नहीं लग रही है।

और अन्त में लॉकडाउन में जब गुटखा आदि लगभग अनुपलब्ध होने की स्थिति में आ ही गया है तो उस पर देशव्यापी रोक हमेशा के लिए क्यों नहीं लगा देनी चाहिए? ❑

कहानी

श्वेत तमस

❑ प्रदीपिका सारस्वत

अपने बारे में कुछ बताओ?

'मैं सुंदरता से प्रेम करती हूँ। खुली आँखों से सपने देखती हूँ। यथास्थिति को चुनौती देने में विश्वास रखती हूँ। धारा के विपरीत तैरने को तैयार हूँ।'

सुंदर।

'उतना भी नहीं।'

ऐसा क्यों कहती हो?

'क्योंकि ये आसान नहीं है। क्योंकि इसका हर दिन अभ्यास करना पड़ता है। और ऐसा करते हुए आखिर में आप अकेले छूट जाते हैं।' रुक कर वह हँसती है, फिर कहती है, 'आप जान जाते हैं कि अकेलेपन की कोई शुरुआत, कोई अंत नहीं है।'

ये क्या कह दिया उसने!

मुझे ये मुश्किलें, यह अकेले छूट जाना ही तो सुंदर लगता है. अकेले बैठे हुए जब तुम बहुत आकुल होते हो तो तुम पर खिंचे आकुलता के उस काले आसमान पर नीरव सुखों की बिजलियाँ कौंधती हैं. कुछ ही क्षणों को खुलने वाली उन खिड़कियों में वह पूरा संसार होता है, जिसे हम पाना चाहते हैं. पर जानते हैं कि पाना संभव नहीं होगा. हम स्वयं को दिलासा देते हैं कि पाने की इच्छा के बने रहने में ही उसकी सुंदरता है. न तो पाना संभव होता है, न उस इच्छा का खत्म होना.

शहर में बहुत से फुट ओवर ब्रिज हैं जिनपर अनजान व्यक्तियों से मिलकर बातें की जा सकती हैं। जीवन से न जाने क्या कुछ चाहने वाले बहुत से ऊबे हुए लोगों की तरह मैं भी वहाँ जाता हूँ। जिनसे एक बार मिलता हूँ, उनसे दोबारा मिलना हो सके, ऐसा बहुत कम होता है। क्योंकि एक बार अंतरंगता के द्वार के समीप पहुँचते ही, परिचित जीवन की वह सारी ऊब, जिससे बचकर हम पुल पर आते हैं, हमें फिर से घेर लेती है और हम फिर भाग निकलते हैं। जीवन के उबाऊ खेलों में यह खेल भी जुड़ जाता है। पुराने परिचयों से भाग कर नया परिचय बनाना, और नए परिचय के पुराना पड़ते ही किसी नए की खोज में निकल जाना।

इन दिनों सारा शहर खामोश है। कहने को लोग अपने घरों में बंद हैं। दफ्तरों, दुकानों, फ़ैक्ट्रियों में कोई काम नहीं होता। कोई छूत की बीमारी फैली है। वैसी, जो पहले कभी नहीं फैली थी। फ़रमान है कि जो जहाँ है, वहाँ से न निकले। कहते हैं कि दुनिया रुक गई है, वैसे, जैसे पहले कभी नहीं रुकी। लेकिन पुलों पर लोगों का जाना नहीं रुकता। इन पुलों पर किसी राजा का कोई फ़रमान नहीं चलता।

मैं न जाने कितनी लड़कियों से इस पुल पर मिला हूँ। किसी ने अकेले छूट जाने के बारे में इस तरह से कभी कुछ नहीं कहा। जबकि लगभग हर एक अकेले छूट जाने से डरी हुई है कि कहीं रुकती ही नहीं। डरती है कि कहीं इधर कुछ देर रुक गई तो 'वो' कहीं और न चला जाए। 'वो' कौन है, कोई नहीं जानती। ये भी नहीं जानतीं कि वो मिल भी जाएगा तो उसके साथ ये करेंगी क्या? ये अपने बड़े-से कल्पनालोक को, जो सिर्फ चमकीले काग़ज़ों का बना है, उसके कंधों पर धर देना चाहती हैं, बिना यह जाने कि उन कंधों पर पहले से क्या-क्या रखा है।

अपने अकेलेपन, अपनी ऊब का साक्षात्कार कोई नहीं करना चाहती। वे बस इतना जानती हैं कि उनके जीवन में जो कुछ कम है, उसके मिल जाने से पूरा हो जाएगा। वे इसे जानती नहीं हैं, बस ऐसा मानती हैं। ऐसा कहीं होता है क्या? किसी और के खा लेने से हमारी भूख मिट जाती है क्या?

फिर उसने कैसे जान लिया कि हमारा होना ही हमारा अकेला होना है। इतनी कम उम्र में इतना साफ देख लेना? कहाँ से आई होगी वह? कम समय में दूर तक चली होगी।

ऐसा लग रहा है, बहुत लंबे अरसे बाद किसी से मिला हूँ। वह चली गई है। मैं अब भी पुल पर खड़ा हूँ। ये पुल अलग तरह के होते हैं। इन पर खड़े होकर नीचे नहीं झाँका जा सकता। पुल के दोनों ओर इतनी ऊँची-ऊँची दीवारें हैं कि आप नीचे देख ही नहीं सकते, बस कल्पना ही कर सकते हैं कि नीचे के संसार में क्या हो रहा होगा। पुल से नीचे की ओर उतरती दोनों तरफ की सीढ़ियों पर बड़े-बड़े आरामगाह बने हुए हैं। पुल पर आने वाले जब यहाँ आकर थक जाते हैं, तो वे इन आरामगाहों में बैठते हैं।

यहाँ सैकड़ों खिड़कियाँ हैं। जो संसार के दूर के कोनों तक खुलती हैं। इन खिड़कियों से झाँकते समय आपको लगेगा कि आप कितनी अलग-अलग चीज़ें देख रहे हैं। पर मुझे विश्वास है कि अगर मैं उससे इन खिड़कियों के बारे में पूछूँगा तो वे कहेंगी, सब खिड़कियाँ एक सा दिखाती हैं।

मैं भी थक कर आरामगाह में आ बैठा हूँ। सामने की एक खिड़की पर लोगों का बड़ा हुजूम दिखाई दे रहा है। हाथों में गठरियाँ, पोटलियाँ उठाए ये लोग किसी पुल के नीचे से गुज़र रहे हैं। वही पुल है शायद, जिस पर अभी कुछ देर पहले मैं खड़ा हुआ था। लंबी भीड़ है, खत्म ही नहीं होती दिखती। साइकिलों पर, व्हील चेयर पर, पैदल, इतने लोग? कहाँ से आए हैं? कहाँ जा रहे हैं? इन्हें बीमारी से डर नहीं लगता? क्या ये बीमार हैं? या फिर ये बीमारी से बचने के लिए चल रहे हैं?

भीड़ में एक चेहरा जाना पहचाना-सा दिख रहा है। इन बुज़ुर्ग को मैं जानता हूँ। कहीं तो देखा है इन्हें। ये तो बलराम बाबा हैं, सोसाइटी के बाहर वाली सड़क पर चाय का ठेला लगाते हैं, सुरसत्ती अम्मा के पति। सुरसत्ती अम्मा मेरी सोसाइटी में काम करती हैं, मेरे घर भी खाना बनाने आती हैं।

महीने भर पहले जब बीमारी फैलनी शुरू हुई तो मैंने उन्हें काम पर आने से मना कर दिया था। आज सुबह ही सीढ़ियों पर मिली थीं। कुछ लोगों ने उन्हें फिर काम पर बुला लिया है। मुफ्त का पैसा क्यों दिया जाए, और फिर खुद काम करना कितना मुश्किल है! रोज़ दो बार खाना बनाना, झाड़ू मारना, बर्तन माँजना। इतना करने के बाद कुछ और करने

की हिम्मत ही नहीं बचती। तो फिर क्यों न उसी को करने दिया जाए, जिसे इस काम के पैसे मिलने हैं। बीमारी से हैंड सेनेटाइज़र बचा लेगा। और फिर सुरसत्ती अम्मा को मना कर दिया गया है कि वे लिफ्ट का इस्तेमाल न करें। पैंसठ साल की सुरसत्ती अम्मा चौदहवीं मंजिल की सीढ़ियों पर हाँफतीं मिली थीं।

पर खिड़की में बलराम बाबा के साथ अम्मा नहीं दिख रही थीं। उनके साथ एक पतली-दुबली औरत थी और दो छोटी-छोटी लड़कियाँ। चारों के हाथों में अपनी-अपनी ताकत के हिसाब से पोटलियाँ थीं। सबसे छोटी लड़की के हाथ में दरअसल पोटली नहीं थी, एक पिल्ला था। ये तो सोसाइटी के बाहर रहने वाली काली कुतिया के पिल्लों में एक था। कल्लो नाम है उसका। सुरसत्ती अम्मा उसके बारे में बात करती हैं, बची हुई रोटियाँ उसके और पिल्लों के लिए ले जाती हैं। मैं अब और देर तक आराम करने की सूरत में न था।

मैं घर की ओर चल पड़ा हूँ।

धूप इतनी सफेद है कि चाँदनी का अहसास होता है. पश्चिम की तरफ आसमान पर स्लेटी जाजिम बिछने लगी है. शहर की हवा इन दिनों साफ है, पर गर्म इतनी कि बदन को छूते ही जलाने लगती है. चलते हुए गर्दन पर पानी के छोटे-छोटे सोते फूट रहे हैं. कुछ कॉलर में जज़्ब हो जाते हैं तो कुछ फिसल कर सीने को सहलाने लगते हैं. जैसे इस तरह भीतर कुछ ठंडक पहुँच जाएगी.

मुझे सुरसत्ती अम्मा से मिलना है। न जाने क्यों मैं एक डर महसूस कर रहा हूँ। जैसे मुझसे कुछ छूट गया है, कुछ छूट जाने वाला है। घर की ओर जाते हुए भी मुझे लग रहा है कि मैं किसी उजाड़ मैदान की ओर बढ़ रहा हूँ, जहाँ हवा में उड़ने वाली धूल और सर कटे, सूखे पेड़ों के ठूँठों के सिवाय कुछ नहीं है। मुझे प्यास लग रही है। मुझे भूख भी लग रही है। एक-एक कदम चलना इतना कठिन हो रहा है। एकाएक मेरे सिर से एक लहर सी उठती है, तेज़ी से आँखों में उतरते हुए नाक में ठहर जाती है। जैसे मैं नदी में डूब रहा हूँ और पानी मेरी नाक से भीतर जाने लगा है।

न जाने कब से मैं सो रहा हूँ, बेहोशी की नींद में। आँख खुली है तो दरवाज़े पर बहुत शोर सुनाई दे रहा है। कोई ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा पीट रहा है। कई आवाज़ें सुनाई दे रही हैं। 'पुलिस को फोन करो। और क्या कर सकते हैं ऐसे में।' लग रहा है जैसे दरवाज़ा तोड़ ही देंगे। मैं सोचता हूँ कि मैं सपना देख रहा हूँ। लेकिन नहीं, मैं उठकर दरवाज़े की तरफ जाता हूँ। सचमुच दरवाज़ा तोड़ने की कोशिश हो रही है। दरवाज़े के पीछे चाभी टाँगने के बोर्ड से चाभियाँ नीचे गिर पड़ी हैं।

मैं चिल्लाकर उन्हें रोकना चाहता हूँ, पर मेरे गले से आवाज़ नहीं निकलती। मैं दरवाज़ा खोलता हूँ, उस तरफ से धक्का मार रहा लड़का लगभग मेरे ऊपर आ गिरता है। मास्क लगाए हुए लोगों की एक अच्छी ख़ासी भीड़ मेरे फ्लैट के सामने खड़ी है। पचास से तो क्या ही कम होंगे। पीछे कॉरिडोर में कुछ औरतें भी हैं। इनके मास्क इन्हें बीमारी से नहीं बचा सकते, जबकि ये एक-दूसरे के इतने पास खड़े हैं, एक पागल भीड़ की तरह।

पुलिस आ चुकी है, डॉक्टर भी है। पड़ोसियों को, आरडब्ल्यूए के अधिकारियों को लग रहा है कि मैं बीमार हूँ। मैंने काफ़ी देर से दरवाज़ा नहीं खोला। मुझे कई फोन भी किए गए, पर कोई जवाब नहीं मिला। वे सब मेरे दरवाज़े पर चले आए। कुछ के हाथों में उनके कैमरे हैं। वे रिकॉर्ड रखना चाहते हैं कि सोसाइटी में एक दरवाज़ा तोड़कर मरीज़ को निकाला गया। गहरी नींद में सोना मेरी नितांत निजी घटना है। पर छूत से फैलने वाली यह बीमारी एक वैश्विक आपदा है। आपदा के समय में कुछ भी निजी नहीं रहता। नींद भी नहीं।

पुलिस वाले मुझे थाने ले जाना चाहते हैं। पर डॉक्टर मेरा परिचित है। मैं उसे बताता हूँ कि मैं बिलकुल स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ। डॉक्टर मेरा तापमान लेता है। मेरे भीतर बीमारी का कोई लक्षण नहीं है। वह कहता है कि यहाँ खड़े सभी लोगों की जाँच होनी चाहिए। एक-एक कर सब लोग चुपचाप अपने घरों की ओर निकलने लगते हैं। जाने से पहले डॉक्टर कहकर जाता है कि मैं घर पर ही रहूँ। मैं पुल के बारे में सोचने लगता हूँ। और सुरसत्ती अम्मा के बारे में।

सब चले गए हैं। मेरे फोन में आरडब्ल्यूए वालों की कॉल्स हैं। सबसे पहला फोन सुरसत्ती अम्मा का है। मैं जल्दी से उन्हें फोन करता हूँ। मुझे बहुत दिनों से किसी को फोन करने की ऐसी बेचैनी नहीं हुई। सुरसत्ती अम्मा बताती हैं कि आज उन्होंने कटहल बनाया था। वे जानती हैं कि कटहल मुझे बहुत स्वादिष्ट लगता है। उन्हें फिक्र थी कि इतने दिनों से मैं न जाने कैसे बना-खा रहा हूँ। वे डरते-डरते कह रही थीं कि कुछ कटहल मेरे लिए रख दिया है। शाम को मिश्रा के यहाँ खाना बनाने जाएँगी तो लेती आएँगी, अगर मैं कहूँ तो।

मैं घड़ी देखता हूँ। तीन बज रहे हैं। कल शाम राजमा चावल बनाए थे, इंस्टेंट। उनके एक-से स्वाद से थक चुका हूँ। कटोरा अब भी फ्रिज में पड़ा है। मैं कटहल खाना चाहता हूँ। अभी। भूख अचानक से बहुत तेज़ हो गई है, सिर में दर्द महसूस होने लगा है। दिमाग कुछ साफ-साफ काम नहीं करता। दरवाज़ा, भीड़, बीमारी, कटहल। मैं दरवाज़े का ताला लगाकर नीचे चल पड़ा हूँ।

मुझे नहीं पता, सुरसत्ती अम्मा कहाँ रहती हैं। कौन बताएगा मुझे! नीचे कल्लो के दो पिल्ले घूम रहे हैं। ये बता सकते हैं। पर मैं उनसे नहीं पूछता। सोसाइटी के दाईं ओर एक पतली-सी गली है। मैं उसी गली में जा रहा हूँ, धूल से अटी गली, जिसके एक तरफ चमचमाती हुई सपाट, ऊँची दीवार है और दूसरी तरफ झाड़ियाँ। झाड़ियों के उस ओर दूसरी सोसाइटी की दीवार तक कुछ झोपड़ियाँ हैं, टीन की छतों और काली प्लास्टिक से ढँकी। पर कोई आदमी नहीं दिखता। सब सुनसान पड़ा है। नीले रंग के एक दरवाज़े के आगे काली कुतिया बैठी है। मुझे विश्वास है कि यहीं रहती हैं सुरसत्ती अम्मा।

देर तक वहीं खड़े रहने के बाद भी मैं दरवाज़ा नहीं खटखटा पाता। न जाने क्यों मैं रोना चाहता हूँ, हताशा से, गुस्से से,भूख से। बहुत असहाय महसूस कर रहा हूँ। मैं रो पड़ता हूँ, जैसे बचपन में रोया करता था। ज़ोर-ज़ोर से। चेहरे को हाथों में छुपाए। कल्लो उठकर मेरे पास आ गई है, मेरे पाँव सूँघ रही है।

अम्मा मुझे देखकर हैरान नहीं होतीं। वे थोड़ी देर रुकने को कहती हैं। कहती हैं, टिफिन लाकर देंगी। मैं उनके घर में भीतर चला

जाता हूँ। बहुत नीची छत है, भीतर सीधा खड़ा नहीं हुआ जा सकता। ज़मीन को गोबर और मिट्टी से लीपा है। एक कोने में प्लास्टिक के दो तीन बड़े-बड़े ड्रम रखे हैं। शायद पानी है उनमें, या बाकी चीज़ें। दूसरे कोने में कुछ सूटकेस, बक्से और उनके ऊपर तह किए हुए बिस्तर। एक कोने में रसोई है, छोटे बड़े कुछ डिब्बे, टोकरियाँ। दीवार के सहारे एक दरी बिछी है। मैं उसी पर जा बैठा हूँ।

मैं अनुभव कर रहा हूँ कि पहाड़ों पर अपने गाँव में हूँ। अपने बचपन में। जीने को कितना ही चाहिए? मैं अब पहले की तरह रो नहीं रहा हूँ। पर भीतर बहुत कुछ हो रहा है। मैं उस सब को देख रहा हूँ।

कभी कुछ खोना महसूस किया है? ऐसा लगता है जैसे भीतर कुछ बुझ गया है, कोई शून्य बन गया है भीतर, जो चलती हुई साँस को अपनी तरफ खींचता जा रहा है और जीने के लिए हवा कम पड़ रही है. याद नहीं पड़ता कि जो खोया है, उसके पास होने का सुख कैसा था. बस इतना याद रहता है कि उस सुख के बिना जीवन कितना अर्थहीन है. इतना अर्थहीन कि किसी और विषय की ओर जी नहीं जाता. सारी इंद्रियाँ बस उसी एक सुख की ओर लगी होती हैं. उसी एक सुख के न होने का दुख चारों ओर खिले हुए संसार पर भारी पड़ जाता है.

मेरे हृदय में बर्फ के शहर हैं, बर्फ के घर जितनी छतों से बर्फ के नुकीले त्रिशंकु लटक रहे हैं. सर्दियों के मौसम में किसी ठंडे शहर की छतों पर गिरी बर्फ से बूँद-बूँद पिघलकर गिरता पानी जब ज़मीन पर पहुँचने से पहले ही जम जाता है तो वैसे त्रिशंकु बनते हैं. अम्मा ने स्टील की एक थाली में खाना लाकर रख दिया है। कटहल की सब्ज़ी, रोटियाँ और गुड़। मैं एक निवाला खाता हूँ और सारे त्रिशंकु पिघल कर बह जाना चाहते हैं।

अम्मा का एकलौता बेटा मुंबई से पैदल उनके गाँव जा पहुँचा है। बहुत बीमार है। उसकी बीवी, बच्चे यहीं अम्मा और बाबा के पास रहते थे। उसकी बीमारी की खबर सुनकर सब गाँव गए हैं। अम्मा को रुकना पड़ा। कोई कमाएगा भी तो सही।

अब मुझसे इस झोपड़ी में नहीं रुका जा रहा। कुछ देर पहले जो अपने गाँव का घर लग रहा था, अब वहाँ घुटन हो रही है। इतनी मेहनत करती है अम्मा इस उमर में। न करें तो न जाने क्या हो। मैं पुल पर जाना चाहता था। उसके पास। ये अकेलापन बहुत जानलेवा है। ऐसा लगता है कि मैं एक मकान हूँ, पिछले बहुत से सालों में न जाने कितनी इच्छाओं की ईंटों और कोशिशों के गारे से बना। पर अब जैसे इस मकान पर कुदालें चलाई जा रही हैं। पुल के नीचे से गुज़र रहे वे पैदल मज़दूर अपने हाथों में अपनी कुदालें और फावड़े लिए मुझे थोड़ा-थोड़ा कर तोड़ रहे हैं। बहुत सा मलवा मेरे चारों ओर इकट्ठा होता जा रहा है। उस मलवे के ढेर पर एक तरफ बलराम बाबा चाय बना रहे हैं। सुरसत्ती अम्मा दूसरी तरफ रोटियाँ सेंक रही हैं।

मैं उठकर चला आया हूँ, बिना कुछ बोले। पुल पर वैसी ही भीड़ है। हाथों में तख्तियाँ लिए खड़े लोग। 'मुझे घूमना बहुत पसंद है' या 'मुझे कॉफी से ज्यादा चाय पसंद है' या फिर 'आई नो अ ग्रेट डील अबाउट वाइन्स'। जितने लोग उतनी तरह की तख्तियाँ। यहाँ न तो चाय है, न कॉफ़ी और न ही वाइन। तब ये सब बातें किसलिए?

मैं उससे मिलना चाहता हूँ, जो खुली आँखों से सपने देखती है, जो यथास्थिति को चुनौती देने को, धारा के विपरीत तैरने को तैयार है। पर वे यहाँ नहीं है। मैं जानता हूँ वह यहाँ नहीं हो सकती। यह समय यहाँ होने का नहीं है। मैं वापस लौटने लगता हूँ।

नीचे की आरामगाहों में भी कोई सुकून नहीं, बस शोर है। खिड़कियों पर डरावनी चीज़ें दिखती हैं। एक मरे हुए आदमी की आवाज़ में सुनाई देता है कि बीमारी के कारण इतनी मौतें हो चुकी हैं। बड़ी कंपनियाँ सब छोड़कर वेंटिलेटर बना रही हैं। दुनिया के सबसे अमीर लोग दुनिया को थाम देने वाली इस बीमारी से मानव की रक्षा करने के लिए वैक्सीन बना रहे हैं।

पर दुनिया अब भी चल रही है। सड़कों पर अब भी पैदल चलते लोग हैं। बलराम बाबा अब दिखाई नहीं देते। लोगों के पाँव घायल हैं, वे भूखे हैं। कुछ खिड़कियों पर भूखों को खाना बाँटने वालों की तस्वीरें हैं। कुछ खिड़कियों पर ऊँचे-ऊँचे घरों के सँवरे हुए कोनों की तस्वीरें हैं, तरह-तरह के लज़ीज़ खानों की तस्वीरें हैं। एक खिड़की पर रेल की पटरी पर बिखरी हुई रोटियों की तस्वीर टँगी है। एक ही कोण से किसी का उजला और काला चेहरा एक साथ कैसे देखा जा सकता है? ये नहीं होना चाहिए। मुझे अब उबकाई आ रही है।

'ये जो बीमारी है, एक प्रयोग है, एक परीक्षण', आरामगाह से निकलते-निकलते मैं किसी को कहते सुनता हूँ।

उफ़! मैं नहीं जानता कि कहाँ जाऊँ। घर, जहाँ से भाग कर मैं पुल पर चला आता हूँ? या पुल, जहाँ से भागकर मैं सुरसत्ती अम्मा को ढूँढने गया था। सब धुँधला होता जा रहा है। मैं फिर बेहोशी में उतर रहा हूँ। सबकुछ पानी में डूब रहा है। चमचमाती, ऊँची इमारतें, जो अब खाली पड़ी हैं। घरों में बैठे, तस्वीरें उतारते लोग। खिड़कियाँ, सड़कें, सोसाइटीज़, शहर के सारे पुल। बहाव बहुत तेज़ है। बदन के पानी का दबाव भी।

अब मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा। मेरा शरीर पानी में नीचे गिरता जा रहा है और किसी भी क्षण धरातल को छू सकता है। एक हलकी सी आवाज़ और अब मैं ज़मीन पर हूँ। यहाँ कोई शोर नहीं है। सब खत्म हो जाने के बाद सब खत्म हो जाता है, वह सब जो देखा जा सकता है, सुना जा सकता है, छुआ जा सकता है, साँसों में उतारा जा सकता है, चख कर देखा जा सकता है। इन आखिरी पलों में भी मैं बिलकुल अकेला हूँ। आखिरी पल? शायद सब खत्म हो चुका है। सब खत्म होने के बाद भी कुछ आखिरी हो सकता है क्या?

मैं एक आवाज़ सुन रहा हूँ। बाँसुरी की आवाज़। ये कानों से सुनाई नहीं देती, वरन महसूस होती है, किसी ऐसी इंद्रिय से, जिसके बारे में हमें कभी बताया नहीं गया। मेरे आस-पास एक सफ़ेद अँधेरा घिर आया है।

वह मुझे अपने बारे में बता रही है।

'मैं सुंदरता से प्रेम करती हूँ। खुली आँखों से सपने देखती हूँ। यथास्थिति को चुनौती देने में विश्वास रखती हूँ। मैं धारा के विपरीत तैरने को तैयार हूँ।' ❑

मुम्बई से पलायन कर रहे हैं लोग शहर खाली हो रहा है

❑ जयंत दिवाण

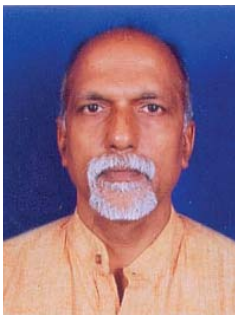

गिरमिटिया शब्द गांधीजी की आत्मकथा में पढ़ा था। फिर गिरिराज किशोर ने उपन्यास लिखा 'पहला गिरमिटिया', वह पढ़ा। लेकिन गिरमिटिया का अर्थ मुझे स्वामी भवानीदयाल संन्यासी की 'प्रवासी की आत्मकथा' से सही मायने में पता चला। शब्दों का अर्थ तभी पता चलता है, जब हम उन्हें अनुभव करते हैं। गिरमिटिया शब्द आज मैं अनुभव कर रहा हूं, जब लोग अपने गांव पैदल-पैदल चलते जा रहे हैं। मुम्बई में मजदूरों के झुंड के झुंड देख रहा हूं। यह दृश्य मेरे लिए अनोखा है। मुम्बई श्रमजीवियों की है। यह हम हमेशा कहते आये हैं। मुम्बई के हुतात्मा चौक में जो प्रतिमा है, वह मजदूर व किसान की है। लेकिन यह मजदूर, श्रमजीवी जिस तरीके से दृश्यमान हुए हैं, वह चकाचौंध मुम्बई के मुंह पर जोरदार थप्पड़ की तरह है।

प्रवासी मजदूरों को अपने गांव लौटना है। मेरे घर के पास स्कूल है। स्कूल के मैदान में लोगों को इकट्ठा किया जाता है और वहां से महानगरपालिका के बसों से रेलवे टर्मिनस तक ले जाया जाता है। यह कार्यवाही पुलिस कर रही है। वहां मैं गया, तब लोगों की भीड़ ही भीड़ थी। बाल-बच्चे, सामान के साथ लोग यहां वहां बैठे थे। लाउडस्पीकर से नाम पुकारा जा रहा था। लोग संबंधित कागजात दिखाते थे। लाइन में खड़े होते थे। फिजिकल डिस्टेंस को खूंटी पर टांग दिया गया था। लाइन में खड़े लोगों को बस में बैठाया जाता था। बस ठसाठस भरी थी। लोगों से मैंने पूछा, आपको कहां ले जाने वाले हैं। उन्होंने कहा बोरीवली रेलवे स्टेशन पर ले जाया जा रहा है। रेल का किराया कौन देगा, इसका जवाब उनके पास नहीं था। वे जो कागज पुलिस को दिखा रहे थे, वह फार्म था। वह फार्म भरकर उन्होंने पुलिस को दिया था। फार्म पर उनका मोबाइल नंबर था। फार्म के साथ उन्हें डॉक्टर का सर्टीफिकेट भी जोड़ना पड़ता है। यह सर्टीफिकेट प्राइवेट डॉक्टर से लाना पड़ता है। डॉक्टर के पास लंबी कतार लगी रहती है। डॉक्टर सौ रुपये लेता है। सर्टीफिकेट पर दस्तखत कर देता है। मैंने पूछा कि डॉक्टर जाँच करता है या नहीं? एक ने कहा कि इतना समय किसके पास है? डॉक्टर केवल पूछता है, सर्दी है क्या? और कतार आगे बढ़ती रहती है। पुलिस मजदूर को फोन करती है। स्थान व तारीख बताती है। वहां मजदूर पहुंचता है और उसका गांव जाने का सफर शुरू होता है। मेरे मन में सवाल आता है कि दस दिन पहले फार्म जमा किया था और आज उसी फार्म के आधार पर पुलिस प्रवास की इजाजत दे रही है। इन दिनों में किसी को कोरोना का संक्रमण हुआ हो तो! यह सवाल निरर्थक है। मुम्बई से ट्रेन में बैठकर निकले प्रवासी मजदूरों के प्रति सरकार कितनी संवेदनशील है, यह हम सभी जान गये हैं। उत्तर भारत को जाने वाली रेलगाड़ियां उड़ीसा होते हुए जा रही हैं। 28 घंटों के बदले, 72 घंटों का सफर है! खाने-पीने का क्या हाल होता है, यह खबरों में हम सभी देख रहे हैं। गांधी जी अंतिम जन की बात किया करते थे। उन्होंने हमें एक जंतर दिया था कि कोई कदम उठाते समय हमें उस आदमी का चित्र सामने लाना चाहिए, जो अंतिम सीढ़ी पर खड़ा है। हमारा कदम उस अंतिम जन की भलाई करने वाला हो तो फिर वह सही कदम होगा, लेकिन गांधी को तो केवल चश्मा व सफाई में फंसाकर रख दिया गया है।

मजदूरों को रेलवे स्टेशन तक पहुंचाने का काम पुलिस कर रही है। सरकारी कर्मचारियों के काम को पुलिस के सर पर लाद दिया गया है। सभी घर में बैठे हैं और पुलिस वह भी काम कर रही है, जो उसका हो नहीं सकता। मुम्बई में 17 मई तक संक्रमित पुलिस वालों की संख्या 600 के ऊपर थी। 8 पुलिस वालों की मौत हुई थी। देश के कुल मरीजों में 38% महाराष्ट्र में है और राज्य के 60% मरीज मुम्बई में हैं। मुम्बई के संक्रमित मरीज मुख्यतः उस इलाके से हैं, जहां मजदूरों की बस्तियां हैं। इन आंकड़ों से आप समझ गये होंगे कि मुम्बई किसके बल पर खड़ी है।

मुम्बई की कपड़ा मिलों का इलाका गिरणगांव कहा जाता रहा है। यह गिरणगांव अब नहीं रहा। मुम्बई सर्विस सेंटर बन गया है। सन् 1990 के बाद मुम्बई का रूप ही बदलता चला गया। अब इस शहर से मध्यम वर्ग गायब हो गया है। मध्यम वर्ग उच्च वर्ग में तब्दील हो गया है। मुम्बई का एक हिस्सा चमकता हुआ है और दूसरा झुग्गी-झोपड़ियों में थका हारा है।

पुलिस के अनुसार तीन लाख मजदूरों ने अपने-अपने गांव जाने के लिए फार्म भरे हैं। यह मजदूर वे होंगे, जो किरायेदार होंगे। जो मालिक होंगे, वे घरबार छोड़कर कैसे जा सकते हैं! तो उनकी संख्या तकरीबन तीन लाख होगी। यानी डेढ़ करोड़ की मुम्बई में केवल छः लाख मजदूर हैं? यह संख्या मानी नहीं जा सकती। मुम्बई की जनसंख्या का 1/5 हिस्सा यानी लगभग तीस लाख लोग झुग्गी झोपड़ियों में रहते हैं।

जिस धारावी की चर्चा अखबारों में हो रही है, जो एशिया की सबसे बड़ी झोपड़पट्टी कहलाती है, वहां की जनसंख्या सात लाख की है। एक किलोमीटर में ढाई लाख लोग रहते हैं। यह यहां की जनसंख्या का घनत्व है। यहां डेढ़ हजार से ज्यादा लोग संक्रमित हैं। धारावी जैसी अनगिनत बस्तियां मुम्बई में हैं। पाकिस्तान के मशहूर लेखक शौकत सिद्दीकी का एक उपन्यास है 'खुदा की बस्ती'! उस उपन्यास में कराची की झुग्गी बस्ती का रहन-सहन चित्रित किया गया है। यह उपन्यास पढ़ने के बाद मुम्बई की बस्तियों का चेहरा सामने आ जाता है। ऐसी अनेक खुदा की बस्तियां मुम्बई में भरी पड़ी हैं।

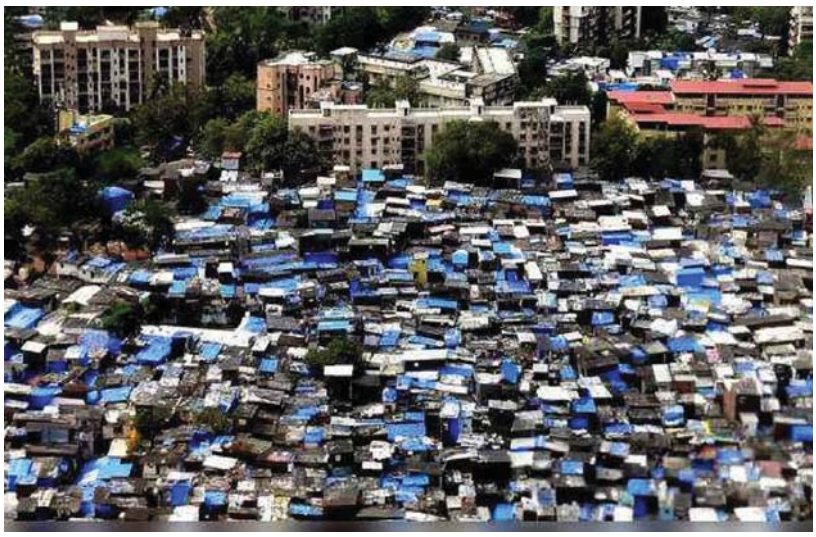

मुम्बई में दोपहर तक दुकानें खुली रहती हैं, लेकिन दुकानों में माल ही नहीं है। माल आयेगा कहां से, जबकि उत्पादन ही ठप्प है। उत्पादन के लिए लेबर लगता है और लेबर तो मुम्बई से पलायन कर गया है। होटल कर्मचारी, रिक्शा, टैक्सी ड्राइवर, सिक्यूरिटी गार्ड, कंन्स्ट्रक्शन वर्कर, लिफ्टमैन, इलेक्ट्रीशियन, कॉन्ट्रैक्ट लेबर, घरों में काम करने वाली महिलाएं, सेवा देने वाले लेबर, इनके अभाव में कारोबार का चक्का जाम होगा। छोटे, लघु उद्योग कैसे चलेंगे? बड़े कारखाने कैसे चलेंगे? शरद पवार ने कहा कि जब लेबर गांव जाना चाहता था, तभी व्यवस्था कर दी होती तो यह आफत नहीं आती। कारोबार चलाने के लिए लेबर ले आने होंगे। कारोबार के अभाव में सरकार को रेवन्यू कहां से आयेगा? महाराष्ट्र सरकार ने दारू की होम डिलेवरी करने के लिए इजाजत दी है। दारू बेचकर सरकार रेवन्यू बटोरने जा रही है।

बीमारी फैल रही है। सरकारी अस्पताल मरीजों से भरे पड़े हैं। सर्वोदय के बजरंग सोनवणे को चार दिन पहले सांस की तकलीफ हुई। दवाखाने बंद हैं। प्राइवेट हॉस्पिटल ने उन्हें दरवाजे से ही लौटा दिया। पैथालॉजी लैब ढूंढ़ने पर सभी बंद मिले। वे घर लौट आये। नसीब से वे ठीक हैं। अस्पतालों में नर्स, वॉर्डबॉय, डॉक्टर की कमी है। यातायात के अभाव में कर्मचारियों का ड्यूटी पर आना असंभव-सा हुआ है। लोकल चलाने की मांग हो रही है, ताकि कर्मचारी ड्यूटी पर आ सकें। सरकार अलग-अलग जगह अस्थाई वॉर्ड की व्यवस्था कर रही है। लेकिन इन अस्थाई वार्डों को संभालेगा कौन? महाराष्ट्र सरकार ने केरल सरकार से डॉक्टर व नर्स की मांग की है। सेवेन हील हॉस्पिटल ने छः सौ डॉक्टरों के लिए विज्ञापन दिया है। पूरी स्वास्थ्य व्यवस्था चरमरा गयी है। महामारी का यह बोझ स्वास्थ्य व्यवस्था ढो नहीं पा रही है। कल की मुम्बई नकाबी थी। अब उसका नकाब उतर चुका है।

मुम्बई में बारिश शुरू होने वाली है। नाला सफाई के लिए टेंडर मंजूर हुए हैं। ठेकेदार नाला सफाई कब करेंगे, पता नहीं। पिछले वर्ष बारिश ने मुम्बई को झकझोर दिया था। इस वर्ष क्या होगा, यह सवाल मुम्बई के सामने है। इस समय भी नेतागण राजनीति से बाज नहीं आ रहे हैं। महाराष्ट्र के राज्यपाल को इसी समय सूझा कि राजभवन के प्रशासकों की नियुक्ति करने का अधिकार उन्हें मिले। लोग दर-दर घूम रहे हैं और राज्यपाल मांग क्या कर रहे हैं? क्या यह मांग इसी संकट की घड़ी में करनी थी? बाद में नहीं की जा सकती थी? भूतपूर्व मुख्यमंत्री नारायण राणे, जो अब भाजपा में चले गये हैं, राज्यसभा सदस्य हैं, उन्होंने राष्ट्रपति शासन लागू करने की मांग की है। यह मांग किसके इशारे पर हो रही है?

36 विधायक, 6 सांसद, 277 नगर सेवक मुम्बई का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन लोक प्रतिनिधियों की कुल संख्या 319 होती है। इनकी आवाज सुनायी नहीं दे रही है। अब एक नया संकट टिड्डी दलों का आ चुका है। महाराष्ट्र के विदर्भ में टिड्डी दल आ चुका है। बताया गया है कि एक दिन में 35 हजार लोग जितना खाना खाते हैं, उतना एक किलोमीटर के दायरे में फैला टिड्डियों का झुंड चट कर जाता है। किसान बेहाल है।

मेरे एक आर्किटेक्ट मित्र हैं। वे कह रहे थे कि उन्हें पढ़ाई में सिखाया जाता है कि शहर कैसे बढ़ते जाते हैं। पहले वे मेट्रो सिटी कहलाते हैं। फिर मेगा सिटी कहलाते हैं। और उसके आगे डेड सिटी कहलाते हैं। डेड सिटी का मतलब है, शहर से लोग पलायन करने लगते हैं। शहर खाली होने लगता है। शहर मृत्यु की ओर बढ़ने लगता है। तो क्या मुंबई डेड सिटी होने की ओर बढ़ रही है? न केवल मुम्बई, बल्कि देश के दूसरे मेट्रोपोलिटन शहर भी, जहां बड़े उद्योग हैं, जहां रोजगार की संभावनाएं हैं, जहां देश के लगभग सभी हिस्से से लोग अलग-अलग सपने लेकर आते हैं और इन शहरों की डेमोग्राफी में समाहित हो जाते हैं। हर जगह की वही स्थिति है। हर शहर से लोगों का पलायन हुआ है। हर मेट्रो शहर डेड सिटी बनने की ओर है। ❑

सर्व सेवा संघ की राष्ट्रीय कार्यकारिणी सम्पन्न
सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के लिए समिति का गठन

8 जून 2020 को सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) की राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति की ऑन लाइन बैठक ज़ूम एप पर संपन्न हुई, जिसमें 13 राज्यों-असम, बिहार, दिल्ली, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, केरल, महाराष्ट्र, ओड़िशा, झारखंड, तेलंगाना और उत्तर प्रदेश के कुल 17 प्रतिनिधियों ने भाग लिया.

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही द्वारा जारी एक प्रेस विज्ञप्ति में कहा गया है कि सर्व सेवा संघ की कार्यकारिणी की बैठक 29 मार्च 2020 को कोट्टयम (केरल) में आयोजित की गयी थी, पर कोरोना वायरस के कारण 10 मार्च को केरल सरकार ने सभी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक कार्यक्रमों पर प्रतिबन्ध लगा दिया. ऐसी स्थिति में हमें कोट्टयम में आयोजित बैठक को स्थगित कर उसे 29 मार्च को सेवाग्राम में आयोजित करने का निर्णय किया गया. पर केन्द्र सरकार द्वारा पूरे देश में लॉकडाउन घोषित किये जाने के कारण इस बैठक को भी रद्द करना पड़ा. प्रेस विज्ञप्ति में कहा गया है कि चूंकि अभी तक बैठक, सभा, सम्मेलनों पर प्रतिबंध होने के कारण कार्यकारिणी का प्रत्यक्ष मिलना निकट भविष्य में संभव नहीं लग रहा है, इसलिए इस बैठक का आयोजन ज़ूम पर करना पड़ा.

पिछले कुछ दिनों से सेवाग्राम आश्रम के विवाद के बारे में विभिन्न अख़बारों में तरह-तरह के समाचार आ रहे हैं. सर्व सेवा संघ की यह कार्यकारिणी इस पर अपनी चिंता व्यक्त करती है. इसे संगठन का आतंरिक मामला मानते हुए कार्यकारिणी इसको लेकर किसी के भी प्रेस में जाने को अनुचित मानती है. सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान की स्थापना सर्व सेवा संघ द्वारा की गई है. अतः इसके सुचारु संचालन हेतु सर्व सेवा संघ प्रतिबद्ध है. इस सम्बन्ध में पूरी परिस्थिति के अध्ययन तथा समस्या के समाधान के लिए भवानी शंकर कुसुम (जयपुर) की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया है. समिति के अन्य सदस्य हैं- * जयवंत मठकर, पुणे, * लक्ष्मीदास, दिल्ली, * अरविंद रेड्डी, हैदराबाद.

इस समिति से अपेक्षा की गयी है कि वह सभी पक्षों से बात कर 15 दिनों में अनुशंसा के साथ अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करे.

प्रवासी मजदूरों के बारे में प्रस्ताव : बैठक में सर्वसम्मति से लॉकडाउन के कारण उत्पन्न स्थिति तथा प्रवासी मजदूरों के दुःखों पर गहरी चिंता व्यक्त करते हुए यह प्रस्ताव पारित किया गया -

'कोरोना वायरस के नियंत्रण के उद्देश्य से घोषित लॉकडाउन के चलते प्रवासी मजदूरों सहित अन्य गरीब वर्गों को अपार कष्ट झेलना पड़ रहा है. पश्चिम बंगाल, ओड़िशा, बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों के मजदूर अन्य प्रान्तों में रोजगार की तलाश में जाते रहते हैं, जिनकी संख्या 10-12 करोड़ बतायी जाती है. अचानक लॉकडाउन की घोषणा से भारत के प्रत्येक नागरिक को जहां का तहां बने रहने और सुरक्षित सामाजिक (शारीरिक) दूरी बनाये रखने को कहा गया. ये प्रवासी मजदूर अपने कार्यस्थलों के निकट मलिन एवं सघन बस्तियों में रहते हैं, जहां दूरी बनाये रखना संभव ही नहीं है. लॉकडाउन के बाद इन मजदूरों के नियोक्ताओं ने काम बंद कर दिये और मकान मालिक घर छोड़ने का दबाव डालने लगे. ट्रेन, बस सहित आवागमन के सभी साधन बंद थे. इस भीषण स्थिति में मजदूर पैदल ही अपने गावों की ओर चल पड़े. सरकार ने इन्हें समय रहते कोई सहायता तो नहीं ही दी, बल्कि कई स्थानों पर उनका पुलिस द्वारा दमन किया गया. रेलगाड़ियों तथा अन्य विभिन्न दुर्घटनाओं के साथ ही भूख-प्यास से सैकड़ों की संख्या में ये मजबूर श्रमिक मारे गये हैं.

सर्व सेवा संघ की कार्यकारिणी इस हृदयविदारक तथा मानवनिर्मित त्रासदी से मर्माहत है. इस दौर में प्रवासी मजदूरों सहित अकाल मृत्यु के शिकार सभी नागरिकों के प्रति वह अपनी गहरी संवेदना व्यक्त करती है. कार्यकारिणी केंद्र सरकार की अदूरदर्शिता एवं कुप्रबंधन के प्रति भी अपना आक्रोश व्यक्त करती है. कार्यकारिणी विपत्ति के इस समय में आगे बढकर राहत कार्य में योगदान करने वाले सर्वोदय मंडलों के कार्यकर्ताओं, व्यक्तियों, संगठनों एवं संस्थाओं के प्रति आभार व्यक्त करती है.'

जॉर्ज फ्लॉयड की हत्या तथा अमेरिका में रंगभेद : कार्यकारिणी ने सर्वसम्मति से अमरीकी अश्वेत नागरिक जॉर्ज फ्लॉयड की बर्बर हत्या तथा रंगभेद की मानसिकता पर गहरा क्षोभ प्रकट करते हुए निंदा की है. कार्यकारिणी महात्मा गांधी के सर्वोदय विचार के अनुरूप विश्व के सभी देशों के नागरिकों के प्रति सद्भावना प्रकट करते हुए पुलिस हिंसा में मारे गए जार्ज फ्लॉयड को न्याय दिलाने तथा उनके शोकसंतप्त परिवार के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करती है.

महात्मा गांधी की प्रतिमा का अपमान : पिछले दिनों वाशिंगटन में कुछ लोगों ने विश्ववंद्य महात्मा गांधी की प्रतिमा को अपमानित किया. सर्व सेवा संघ की यह कार्यकारिणी इस घटना की निंदा करती है तथा जिन लोगों ने भी यह कृत्य किया है, उनकी सद्बुद्धि की कामना करती है. बापू जीवन भर रंगभेद एवं हर प्रकार के भेदभाव के विरुद्ध लड़ते रहे. ऐसे महामानव की प्रतिमा के साथ किसी प्रकार की छेड़छाड़ मानवता के प्रति अपराध है.

लोकसेवकों का नवीनीकरण : हर वर्ष 1 अप्रैल से 30 जून के बीच लोकसेवकों तथा सर्वोदय मित्रों का नवीनीकरण होता है. यह 31 जुलाई तक सर्व सेवा संघ, सेवाग्राम के प्रधान कार्यालय में शुल्क के साथ पहुंच जाना चाहिए. परन्तु कोरोना वायरस की परिस्थिति को देखते हुए नवीनीकरण की अवधि एक महीना बढ़ा दी गयी है. अब नवीनीकृत लोगों की सूची तथा शुल्क सर्व सेवा संघ, प्रधान कार्यालय, सेवाग्राम में 31 अगस्त तक स्वीकार किये जायेंगे.

अगला अधिवेशन : सर्व सेवा संघ का वार्षिक अधिवेशन 30-31 मार्च 2020 को कोट्टयम (केरल) में निर्धारित था, पर लॉकडाउन के कारण वह संभव नहीं हो सका. सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के पूर्व अध्यक्ष जयवंत मठकर ने अनुकूल परिस्थिति होने पर अगला अधिवेशन दिसम्बर में करने का सुझाव दिया, जिसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया. अभी सभा, सम्मेलनों पर प्रतिबन्ध जारी है. अखिल भारत आयुर्विज्ञान संस्थान के निदेशक के अनुसार जुलाई-अगस्त में कोरोना वायरस के सबसे अधिक फैलने की आशंका है. ऐसी स्थिति में इसके तुरंत बाद अधिवेशन आयोजित करना खतरे से खाली नहीं है. अतः इन सब परिस्थितियों पर विचार करके अध्यक्ष को दिसम्बर में अधिवेशन का स्थान, तिथि आदि निर्धारित करने के लिए अधिकृत किया गया.

अध्यक्ष के चुनाव के लिए चुनाव अधिकारी की नियुक्ति पहले ही की जा चुकी है. चुनाव अधिकारी निर्धारित तिथियों के अनुसार चुनाव कार्यक्रम की घोषणा करेंगे। अगले अध्यक्ष का चुनाव होने तक वर्तमान कार्यकारिणी समिति एवं अध्यक्ष पूर्व की भांति अपना कार्य करते रहेंगे.

ज़ूम एप पर बैठक का सर्व सेवा संघ का यह पहला अनुभव था. इसकी सफलता देखकर निर्णय किया गया कि बीच-बीच में इस तरह की बैठक आयोजित की जाती रहे, ताकि आपस में जीवंत संवाद जारी रह सके.

-महादेव विद्रोही
अध्यक्ष

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

नाम था गांधी

एक इंसाँ पैकर-ए-इख़्लास रूह-ए-रास्ती
इक फ़क़ीर-ए-बे-नवा ईसार जिसकी जिंदगी
जिसके हर क़ौल-ओ-अमल में
अम्न का पैग़ाम था, जिसका हर इक़दाम गोया
आफियत-अंजाम था, जिसकी दुनिया बंदगी भगती
सुरूर-ए-जावेदाँ
जिसकी दुनिया कैफ़-ओ-सरमस्ती की
हासिल बेगुमाँ आश्ती थी जिसकी फितरत,
जिसका मज़हब प्यार था
खिदमत-ए-इंसानियत का जो अलम-बरदार था
अज़्म ने जिसकी
हर इक मुश्किल को आसाँ कर दिया
जज़्बा-ए-एहसास-ए-खुद्दारी बशर में भर दिया
नाज़ उठाए हिन्द के वो हिन्द का ग़मख़्वार था
कारवान-ए-हुर्रियत का रहबर-ओ-सालार था
ये भी है मोजिज़-बयानी उसकी हर तहरीर की
नक़्श-ए-फ़र्सूदा से पैदा इक नई तस्वीर की
ख़ाक से शोले उठे और आसमाँ पर छा गए
माह-ओ-अंजुम बन गए,
कौन-ओ-मकाँ पर छा गए,
तीरगी भागी जहालत की
फ़ज़ां छुटने लगी,
हौले हौले तीरा-ओ-तारीक
शब कटने लगी
हर तरफ़ कैफ़-ओ-मसर्रत
हर तरफ़ नूर-ओ-सुरूर
गुंचे गुंचे पर तबस्सुम
चश्म-ए-नर्गिस पर गुरूर
ये फुसूँकारी हुई जिसके सबब,
वो कौन था?
ये जुनूँकारी हुई जिसके सबब,
वो कौन था?
नाम था गाँधी,
मगर उसके हज़ारों नाम हैं
एक मयख़ाना है,
जिसमें हर तरह के जाम हैं

-साहिर होशियारपुरी

तीन कविताएं

गांधी की पुकार

सलाम ऐ उफुक़-ए-हिन्द के हसीं तारों!
सलाम तुम पे सिपहर-ए-वतन के महपारो!
सलाम तुम पे मिरे बच्चों! ऐ मिरे प्यारों!
भुलाए बैठे हो तुम मुझ को किसलिए यारों!
जलाओ मेरे पयामात के दिए यारों!
सुनो कि मेरी तमन्ना-ओ-आरज़ू तुम हो,
सुनो कि मादर-ए-भारत की आबरू तुम हो,
सुनो कि अम्न-ए-ज़माना की जुस्तुजू तुम हो,
ख़मोश बैठे हो क्यूँ अपने लब सिए यारों!
जलाओ मेरे पयामात के दिए यारों!
सलाम तुम पे कि मेरे चमन के फूल हो तुम,
मिरी नज़र मिरी फितरत मिरा उसूल हो तुम,
मगर ये क्या हुआ, किस वास्ते मलूल हो तुम,
ये तुमने चंद ग़लत काम क्यूँ किए यारों!
जलाओ मेरे पयामात के दिए यारों!
वतन में ख़ून के दरिया बहा दिए तुमने,
सभी नुकूश-ए-अहिंसा मिटा दिए तुमने,
रिवाज-कार-ए-मोहब्बत भुला दिए तुमने,
रसूम-ए-मेहर-ओ-वफ़ा तर्क कर दिए यारों!
जलाओ मेरे पयामात के दिए यारों!
सबक़ पढ़ाया था तुम को अदम-तशद्दुद का,
तुम्हें बताया था मैंने गुनाह है हिंसा,
ये तुम ने किसलिए तेग़-ओ-तबर से काम लिया,
तुम्हारे हाथों में ख़ंजर हैं किसलिए यारों!
जलाओ मेरे पयामात के दिए यारों!
तुम्हारे ज़ेहनों में मकरूह साजिश और फ़साद,
दिलों में नफ़रत-ओ-कीना है और बुग़्ज़-ओ-इनाद,
मगर लबों पे है बाबा-ए-क़ौम जिंदाबाद,
मुझे ये खोखले नारे न चाहिए यारों!
जलाओ मेरे पयामात के दिए यारों!
ज़मीन नानक-ओ-चिश्ती पुकारती है तुम्हें,
दयार-ए-बुध की तजल्ली पुकारती है तुम्हें,
सुनो कन्हैया की बंसी पुकारती है तुम्हें,
अब और देर भी करनी न चाहिए यारों!
जलाओ मेरे पयामात के दिए यारों!
उठो ज़माना-ए-हाजिर है इक पयाम-ए-अमल,
उठो कि काँप रही है नवा-ए-साज़-ए-ग़ज़ल,
उठो कि माँद न हो जाए
ये हुस्न-ए-ताज-महल,
उठो कि सीनों में फिर रौशनी जिए यारों!
जलाओ मेरे पयामात के दिए यारों!
फिर अपने ज़ेहनों में लहकाओ
दोस्ती का चमन,
फिर अपनी साँसों से महकाओ
प्यार का मधुबन,
फिर अपने कामों से चमकाओ
सर-ज़मीन-ए-वतन,
तुम्हारे मयकदे में दहर फिर पिए यारों!
जलाओ मेरे पयामात के दिए यारों!
न छोड़ो जिंदा वतन में किसी लुटेरे को,
कुचल दो बढ़ के हर इक साँप को संपेरे को,
मिटाओ फिरक़ापरस्ती के हर अँधेरे को,
बचाओ देश को भगवान के लिए यारों!
जलाओ मेरे पयामात के दिए यारों!
मुझे ये खोखले नारे न चाहिए यारों!

-नाज़िश प्रतापगढ़ी

जिक्र ए गांधी

एक-आध साल से है
फ़ज़ां मुल्क की कुछ और।
ग़ालिब सदी के बाद है गाँधी सदी का दौर।
गाँधी को कौन ऐसा है जो जानता न हो?
इज़्ज़त के साथ उन को बड़ा मानता न हो?
बापू तो उन को प्यार से कहते हैं आज भी।
हर दिल पे सच जो पूछिए है उन का राज भी।
दम से उन्हीं के दौर-ए-गुलामी हुआ तमाम।
आसानी में बदल गया दुश्वार था जो काम।
उस रहबर-ए-अज़ीम ने हम को वो बल दिए।
अंग्रेज़ मुल्क छोड़ के ख़ामोश चल दिए।
सच और उस के साथ अहिंसा की धूम है।
दुनिया का अब समाधि पे उन की हुजूम है।
हर शख़्स सर-निगूँ है बड़े एहतिराम से।
'आदिल' ये क़द्र होती है बे-लौस काम से।

- आदिल जाफ़री

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार